"तमस" में साम्प्रदायिकता का प्रश्न

(एम. फिल. उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

शोध-निर्देशक :

डॉ० वीर भारत तलवार

शोधकर्ता :

राम विनय शर्मा

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा संस्थान

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

1991

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

दिनांक : 21-5-91

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री राम विनय शर्मा द्वारा प्रस्तुत " तमस में साम्प्रदायिकता का प्रश्न " शीर्षक लघु-शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है ।

यह लघु-शोध-प्रबन्ध श्री राम विनय शर्मा की मौलिक कृति है ।

अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110 067

(डा० वीर भारत तलवार)
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110 067

GRAM : JAYENU TEL. : 667676, 667557 TELEX : 031-73167 JNU IN

प्राक्कथन

"तमस" हिन्दी कथा साहित्य की एक महान उपलब्धि है । सन् 1947 में हुए दंगे को आधार बनाकर इस उपन्यास की रचना की गयी है । अब तक इस उपन्यास पर कोई स्वतंत्र शोधकार्य नहीं हुआ है । कुछ शोधकार्य एवं स्वतंत्र पुस्तकें लिखी गयी हैं किंतु वे गौण रूप में तमस का अध्ययन करती हैं । कु0 प्रवीण सेठ के शोध - ग्रंथ " भीष्म साहनी के उपन्यासों में सामाजिकता" में तमस की चर्चा हुई है । उनके अनुसार साम्प्रदायिकता का प्रमुख कारण धर्म के प्रति लोगों की अंध श्रद्धा और संस्कार जनित कुंठाएं हैं । धर्म के ठेकेदारों का अमानवीय कृत्यों के प्रति श्रद्धा भाव,अंग्रेजों द्वारा साम्प्रदायिकता भड़काने का प्रयास, संप्रदायों की मनोवृत्ति, शासक वर्ग की क्रूरता आदि का वर्णन किया है । राजेश्वर सक्सेना के संपादन में प्रकाशित"भीष्म साहनी: व्यक्ति और रचना" में संक्षेप में "तमस" पर विचार किया गया है । अपने लेख "साम्प्रदायिकता का तमस" में राजकुमार सैनी ने प्रतिक्रियावादियों को साम्प्रदायिकता के लिए जिम्मेदार ठहराया है । तात्पर्य यह है कि प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए साम्प्रदायिकता को एक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में भीष्म साहनी एक सशक्त हस्ताक्षर हैं । एक प्रगतिशील साहित्यकार होने के नाते उनकी रचनाओं में सामाजिक प्रतिबद्धता एवं मानवीय गरिमा के प्रति उदात्त भावना पायी जाती है।

कड़ियाँ, झरोखे, तमस, बसंती तथा मय्यादास की माड़ी जैसे उपन्यास हिन्दी साहित्य में भीष्म साहनी की पहचान बनाने में सफल सिद्ध हुए हैं । "तमस " उनकी एक विशिष्ट औपन्यासिक कृति है जो भारत-विभाजन और साम्प्रदायिकता को आधार बनाकर लिखी गयी है ।

"तमस'में साम्प्रदायिकता का प्रश्न" विषय पर शोध करने का मेरा मूल उद्देश्य यही है कि इस अध्ययन के माध्यम से साम्प्रदायिकता की समस्या की जड़ तक पहुँचा जाए । साम्प्रदायिकता "तमस" की मौलिक समस्या हैऔर अभी तक इस विषय पर कोई शोधकार्य नहीं हुआ है । अत: "तमस" के गहन विश्लेषण द्वारा साम्प्रदायिकता के विभिन्न कारणों का पता लगाना मेरा विनम्र प्रयास है । "तमस" पर शोध कार्य के दौरान एक ओर जहाँ साम्प्रदायिकता के संदर्भ में मेरी दृष्टि स्पष्ट हुई, वहीं विभिन्न विद्वानों के विचारों के सिंहावलोकन का अवसर भी मिला । यह सच है कि जन-सामान्य साम्प्रदायिक नहीं होता, वरन् साम्प्रदायिक निहित स्वार्थी तत्व होते हैं जो अपने स्वार्थ के लिए दंगे करवाते रहते हैं । राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भी ऐसा हुआ था ।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध चार अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय "तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियाँ-1942-1947" में भारत की राजनीतिक गतिविधियों एवं सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन किया गया है। इसमें विभिन्न राजनैतिक दलों एवं साम्प्रदायिक संगठनों की गतिविधियों और

स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका पर विचार किया गया है । साथ ही भारत की तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय तमस में साम्प्रदायिकता का स्वरूप एक विश्लेषण में तमस की गहरी छानबीन की गई है । इसमें साम्प्रदायिकता के विभिन्न कारकों मसलन, राजनीति, इतिहास, धर्म, संस्कृति, आबादी एवं सामाजिक आर्थिक पहलू के माध्यम से साम्प्रदायिकता के स्वरूप को पहचानने की कोशिश की गयी है ।

तृतीय अध्याय निष्कर्ष के रूप में है । उसमें तमस के परिणामों के विवेचन के साथ ही साम्प्रदायिक एवं देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखे गये दो उपन्यासों झूठा-सच और आधा गाँव के साथ संक्षेप में ही तुलना भी की गई है ।

चतुर्थ अध्याय "तमस-विवाद" में गोविन्द निहलानी द्वारा निर्देशित दूरदर्शन धारावाहिक "तमस" को लेकर हुए वाद- विवाद की चर्चा है । इसमें विभिन्न राजनैतिक दलों के अतिरिक्त साहित्यकारों, पत्रकारों व रंग कर्मियों के तमस सम्बंधी विचारों को प्रस्तुत किया गया है । विवाद के मुद्दों, उसका आरंभ और न्यायाधीशों के निर्णयों का विवरण दिया गया है ।

तमस को शोध का विषय बनाने का एक प्रमुख कारण यह भी रहा

है कि इसके माध्यम से साम्प्रदायिकता की मूल समस्या को आज के परि-प्रेक्ष्य में समझा जा सके ।

इस लघुशोध-प्रबन्ध के सम्बन्ध में मुझे अपने शोध निर्देशक डॉक्टर वीर भारत तलवार से समय-समय पर जो महत्वपूर्ण सुझाव मिला है, इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ ।

अध्ययन के इस लम्बे दौर में मुझे जो प्यार, प्रोत्साहन एवं आशीर्वाद अपने परिवार जनों से मिला उसके लिए आभार व्यक्त करना अथवा उनके प्रेम का मूल्यांकन करना धृष्टता नहीं तो और क्या है ?

अंत में, मैं उन सभी सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनके बिना यह काम संभव नहीं था ।

----0---- राम विनय शर्मा

-- राम विनय शर्मा

अनुक्रम

पृ0संख्या

प्राक्कथन .....

अध्याय : एक 1-31

तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियाँ
(1942-1947)

1. राजनीतिक परिस्थितियाँ
2. सामाजिक परिस्थितियाँ

अध्याय : दो 32-80

"तमस" में साम्प्रदायिकता का स्वरूप : एक विश्लेषण

1. साम्प्रदायिकता और राजनीति
2. साम्प्रदायिकता और धार्मिक चेतना
3. साम्प्रदायिकता और संस्कृति
4. साम्प्रदायिकता और इतिहास
5. साम्प्रदायिकता और आबादी
6. साम्प्रदायिकता और सामाजिक -आर्थिक पहलू

अध्याय : तीन 81-85

निष्कर्ष

~~अध्याय : चार~~ 86-101

परिशिष्ट - तमस-विवाद

संदर्भ- ग्रंथ सूची .. 102-105

---0---

प्रथम अध्याय

तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियाँ
'1942-1947'

प्रथम अध्याय

" तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक पृष्ठभूमि "
(1942-1947)

साम्प्रदायिकता भारतीय समाज के लिए अभिशाप है । सामान्यतया साम्प्रदायिकता की दूषित मनोवृत्ति का शिकार सीधे सादे निर्दोष लोग होते हैं । साम्प्रदायिक क्रूरता और पशुता ग्रास उन्हें बनाया जाता है, जो सद्भावपूर्ण जीवन जीते हैं और फिरकापरस्ती से दूर रहते हैं । साम्प्रदायिक संघर्ष में मानवता पशुता का रूप धारण कर लेती है और एक विवेकहीन, उन्मादग्रस्त वातावरण में हिंसा का नग्न ताण्डव शुरू हो जाता है । साम्प्रदायिकता के इस भीषण अमानवीय संघर्ष में सारे सम्बन्ध दो टूक हो जाते हैं । भारतीय जनता भी राष्ट्रीय संघर्ष के दिनों में साम्प्रदायिकता का शिकार होने से बच न सकी ।

स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान जहाँ एक ओर साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध दासता से मुक्ति का संघर्ष चल रहा था, वहीं दूसरी तरफ कुछ फिरकापरस्त स्वार्थी ताकतें देश में साम्प्रदायिकता की आग भड़काने लगी थीं । पूरे देश में तनाव बढ़ने लगा था और अंतत: दंगे हुए, जिनमें धन-जन दोनों की व्यापक पैमाने पर हानि हुयी ।

सन् 1947 में हुए हिन्दू- मुस्लिम दंगों में लाखों लोग कत्ल

हुए, हत्या, बलात्कार, आगजनी से मानवता को करारी चोट खानी पड़ी । देश का बँटवारा हुआ । इसका व्यापक स्तर पर प्रभाव पड़ा और लोगों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया । अपने वतन को छोड़कर शरणार्थी बनने की नियति का शिकार भी होना पड़ा । इन सारी समस्याओं से गुजरे हुए लेखक भीष्म साहनी ने " तमस " में इसी दुर्भाग्य-पूर्ण जिन्दगी का सूक्ष्मता से वर्णन किया है । साम्प्रदायिकता को केन्द्र में रखकर भीष्म साहनी ने तत्कालीन सामाजिक- राजनीतिक परिस्थितियों को भी रेखांकित किया है ।

"तमस" का कथानक स्वतंत्रता के कुछ ही दिनों पहले के घटनाक्रम को प्रस्तुत करता है । भारत-विभाजन के उपरांत जिस तरह साम्प्रदायिक दंगों का एक लम्बा सिलसिला चला, उसे समझने के लिए अतीत के इतिहास का सिंहावलोकन आवश्यक है ।

साम्प्रदायिकता एक आधुनिक घटना है जो ब्रिटिश औपनिवेशिक टक्कर के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई । हालांकि भारत के मध्यकालीन इतिहास में, जब मुसलमानों का शासन था, कभी भी साम्प्रदायिक संघर्ष देखने को नहीं मिलता । यह बात पूरी तरह से स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता काउद्भव और विकास बीसवीं सदी में हुआ । राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान इसकी उत्पत्ति देखी जा सकती है । साम्प्रदायिकता जैसी कुत्सित मानसिकता के जन्म लेने के पीछे तत्कालीन, राजनीतिक,सामाजिक , आर्थिक परिस्थितियाँ कम उत्तरदायी नहीं हैं ।

राजनीतिक पृष्ठभूमि :--

सन् 1942 के "भारत छोड़ो" आंदोलन ने भारतीय जनता में नयी चेतना की लहर फैला दी । आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में भारी वृद्धि तथा अभाव की स्थिति से जनता में असंतोष व्याप्त था ।

कांग्रेस की कार्यसमिति ने 14 जुलाई 1942 को हुयी वर्धा बैठक में गांधी जी के संघर्ष प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी । इस आंदोलन का उद्देश्य भारत को आजाद कराना था । गांधीजीने उपना संकल्प व्यक्त करते हुए कहा " या तो हम भारत को आजाद कराएंगे या इस कोशिश में अपनी जान दे देंगे । अपनी गुलामी का स्थायित्व देखने के लिए हम जिंदा नहीं रहेंगे ।" [1]

गांधीजीके इस संघर्ष में किसानों, मजदूरों एवं छात्रों ने खुलकर व्यापक हिस्सेदारी की । इस आंदोलन की सफलता को भांपकर ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और आंदोलन कुचलने के लिए बल-प्रयोग किया गया । इस आंदोलन का असर शहरों से लेकर देहातों तक फैला हुआ था । विद्रोही आंदोलनकारी सभी सरकारी प्रतीकों पर हमला बोल देते थे ।

"भारत छोड़ो" आंदोलन में मुस्लिम जनता ने भी भाग लिया। जबकि भारतीय वामपंथियों ने इसका बहिष्कार किया था ।

---

1. विपिन चन्द्र - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ0 424

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद भारतीय जनता अकाल, मुद्रास्फीति, जमाखोरी और कालाबाजारी से त्रस्त हो गयी । ब्रिटिश शासन द्वारा युद्ध की तैयारियों में हुए खर्च के बोझ से भारतीय जनता कराहने लगी थी । इस स्थिति का लाभ उद्योगपतियों को मिला ।

जून 1945 के मध्य में कांग्रेसी नेता रिहा कर दिये गये । सरकारी दमन चक्र में वृद्धि होने के बावजूद जनता में उत्साह की भावना प्रबल थी । प्रखर राष्ट्रवादी भावना का उभार 1945-46 में अधिकारियों के साथ हिंसक टकराव के रूप में सामने आया । विद्रोह की कई घटनाएँ हुयीं, जिनमें से एक आजाद हिंद फौज के मुकदमे को लेकर 21 नवम्बर 1945 को कलकत्ता में, दूसरी, 11 फरवरी 1946 को रशीद अली के खिलाफ मुकदमें को लेकर कलकत्ता में ही तथा तीसरी घटना, 18 फरवरी 1946 को बम्बई में घटी जब रायल इंडियन नेवी के नाविकों ने हड़ताल कर दी ।

इन विद्रोहों के सिलसिले में यह बात भी उभरकर सामने आती है कि 1946 के शुरू तक नौकरशाही और सेना में अस्थिरता के बावजूद ब्रिटिश - क्षमता में कोई ह्रास नहीं हुआ था और वह कठोर दमन की नीति पर चलती रही । इन विद्रोहों के दौरान जो साम्प्रदायिक एकता का अहसास हुआ वह क्षणिक था, कालांतर में वह टूट गया । यह संगठनात्मक एकता ज्यादा थी, जन- एकता कम, वह भी कुछ ही दिन चल सकी ।

आंदोलन का एक आयाम तिभागा आंदोलन, तेलंगाना संघर्ष पुन्नप्रा व्यालार विद्रोह और पंजाब के किसान मोर्चे के रूप में देखा जा सकता है । किसानों एवं मजदूरों के आंदोलन का मुख्य मुद्दा आर्थिक एवं सामाजिक था । यह लड़ाई सीधे ब्रिटिश शासन के खिलाफ नहीं, परन् जमींदारों, राजाओं और उद्योगपतियों जैसे स्वदेशी शोषकों के खिलाफ थी । जनता में नयी सामाजिक- आर्थिक व्यवस्था के प्रति न्यायपूर्ण स्थान पाने की उद्दाम लालसा थी । स्वतंत्रता आसन्न थी ।

अंग्रेजों ने भारत पर अपना शासन कायम रखने के लिए हर संभव कोशिश की । लेकिन भारतीय जनता में अपने खिलाफ इतने लम्बे संघर्ष और उत्तरोत्तर बढ़ते उत्साह के कारण सरकार भी परेशान थी । अपना शासन बरकरार रखने के लिए ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक शक्तियों को प्रोत्साहित कर रखा था तथा कांग्रेस को संपूर्ण भारतीय जनता की प्रतिनिधि संस्था नहीं मानती थी । कांग्रेस चहती थी कि आजादी अखण्ड भारत के रूप में मिले, जबकि मुस्लिम लीग के नेता आजादी पूर्व बँटवारे पर अडिग थे । सरकार ने जिस मुस्लिम लीग को संरक्षण देकर खड़ा किया था, उसे अस्तित्व-हीन नहीं किया जा सकता था और अब तो लीग मुसलमानों की अधिकांश आबादी का प्रतिनिधित्व करने लगी थी ।

अगस्त 1947 में भारतीय क्षितिज पर दंगों की बाढ़ आ गयी थी । कानून और व्यवस्था बनाये रखने में अंग्रेजी सरकार की कोई

रूचि नहीं रह गयी थी । विभाजन की घोषणा के उपरांत लोगों की आखों में जज्बाती खून उतर आया था । हत्या, बलात्कार, लूटपाट की घटनाओं से मानवता काँप उठी । दोनों देशों के लोग हिंदुस्तान-पाकिस्तान के रूप में विभाजन की इस कड़वी सच्चाई को दिल में उतार नहीं पा रहे थे । कांग्रेस साम्प्रदायिक विस्फोट की इस गति का आकलन नहीं कर सकी ।

प्रो० विपिनचन्द्र लिखते हैं —" कांग्रेस के नेता यह नहीं समझ पा रहे थे कि 1940 के दशक- मध्य में जो साम्प्रदायिकता दिखाई पड़ रही थी, वह 1920 या 1930 के दशक की साम्प्रदायिकता नहीं थी , जब अल्पसंख्यकों की आशंकाओं को हवा दी जा रही थी । यह एक निश्चयात्मक"मुस्लिम राष्ट्र" था जो किसी भी तरह अपना अलग अस्तित्व बनाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था ।"[2]

मुस्लिम साम्प्रदायिकता अब ब्रिटिश सत्ता के संरक्षण से मुक्त होकर अलग रास्ता अख्तियार कर चुकी थी । विभाजन पूर्व स्थिति जितनी भयंकर थी उससे कहीं अधिक ज्यादा भयंकर स्थिति विभाजन के बाद हुयी । राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान धर्म-निरपेक्षता को राष्ट्रवादी विचारधारा की बुनियाद, सभी धर्मों की एकता पर विशेष बल दिया गया था । लेकिन परिणाम तो कुछ दूसरा ही निकला । इसके पीछे निश्चित रूप से कुछ खामियाँ रहीं, जिसने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आंदोलन के ऐक्य को तोड़ा ।

2· विपिनचन्द्र - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ० 43।

प्रो० विपिन चन्द्र ने लिखा है ---

" राष्ट्रीय आंदोलन साम्प्रदायिकता को मिटा नहीं सका या देश के विभाजन को रोक नहीं सका, तो इसलिए नहीं कि वह धर्मनिरपेक्ष विचारधारा से भटक गया था, बल्कि इसलिए कि साम्प्रदायिकता से संघर्ष की उसकी रणनीति में कुछ कमजोरियाँ थीं और वह साम्प्रदायिकता की सामाजिक, आर्थिक तथा विचारधारात्मक जड़ों को समझ नहीं पाया।"[3]

राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने शायद जनता की नब्ज समझने में गलती की । वे यह भूल गये कि भारत जैसे बहुविध देश में छोटी-सी भूल से नक्शा बदल सकता है ।

ब्रिटिश सरकार ने अपने साम्राज्यवादी शासन को स्थायित्व प्रदान करने के लिए भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्यता, घृणा और अविश्वास का बीज बोया । उन्होंने " फूट डालो और राज्य करो" की नीति उपनाकर भारतीय जनता को विभाजित करने की साजिश रची, जबकि जनता स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही थी । सरकार ने राष्ट्रीय संघर्ष को उलझा देने के लिए नयी युक्ति ईजाद की । प्रो० विपिनचन्द्र लिखते हैं ---

"राष्ट्रवादिता की बढ़ती हुयी चुनौतियों का सामना करने के लिए शासकों ने तेजी के साथ " फूट डालो और राज्य करो" की नीति

3· विपिन चन्द्र - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ० 459

अपनायी, साम्प्रदायिकता और जातिवाद को प्रोत्साहन दिया । परिणाम यह हुआ कि समाज की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ प्रभावशाली हुयीं ।"[4]

अंग्रेजों की इस कूटनीति का शिकार समाज के कट्टरपंथी मनोवृत्ति के स्वार्थी तत्व हुए । शोषण और उत्पीड़न को प्रोत्साहित करने वाली सरकारी नीति ने ऐसे वर्ग को जन्म दिया, जो देश और समाज का सबसे बड़ा शत्रु बन बैठा । अंग्रेजों की अंधभक्ति को इसने अपना परम कर्तव्य मान लिया ।

" साम्राज्यवादी शासन बने रहने की यह अनिवार्य शर्त है कि भारतीय आबादी के बीच ही एक ऐसा सामाजिक आधार बरकरार रखा जाए जो साम्राज्यवाद के साथ सम्बद्ध हो । प्रत्येक प्रतिक्रियावादी शासन के राज्यतंत्र के लिए यह जरूरी है कि वह जनता में फूट डाले । लेकिन इस तरह का सामाजिक आधार प्रगतिशील तत्वों में नहीं मिल सकता, क्योंकि वे साम्राज्यवाद के खिलाफ तने रहते हैं । यह आधार केवल प्रतिक्रियावादी तत्वों के बीच ही तैयार किया जा सकता है, क्योंकि इस वर्ग के हित हमेशा जनता के हितों के विपरीत होते हैं । "[5]

देश की लगभग चालीस करोड़ जनता पर शासन करना इतना

4· विपिन चन्द्र, स्वतंत्रता संग्राम, पृ0 27

5· रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृ0 444

आसान नहीं था । इसलिए अंग्रेजों ने अपने अधीन भारतीय शासकों को पैदा किया, जो उनके शासनकार्य में मदद कर सकें । " ये सामंती तत्व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मुख्य सहायक थे ।"[6]

हिन्दू-मुसलमान के बीच साम्प्रदायिक, धार्मिक व जातीय भावना को उभारने का काम निहित स्वार्थ वाले अंग्रेजों के साथ भारतीयों ने भी किया और सदैव परिस्थितियों से लाभ उठाने की कोशिश में लगे रहे । इन तत्वों ने राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर बनाने की हर संभव कोशिश की । श्री अयोध्या सिंह ने लिखा है -- " दोनों ने अपने आक्रमण का केन्द्र ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को नहीं, राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस को बनाया ।"[7]

श्री अयोध्या सिंह का संकेत मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा की ओर है । अंग्रेज चाहते भी यही थे कि राष्ट्रीयता की भावना को किसी भी तरह से कुचल दिया जानाचाहिए । लीग और महासभा दोनों अंग्रेजों के इशारे पर नाचने लगीं ।

" अंग्रेजों का पुराना तरीका यह रहा है कि देश में जो कुछ जीवंत और प्रगतिशील है, उसका विरोध करें, जो कुछ प्रतिक्रियावादी और पुरानपंथी है, उसे प्रोत्साहन दें ।"[8]

---

6. डा० राम विलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, पृ० 397

7. अयोध्या सिंह, साम्राज्यवाद का उदय और अस्त, पृ० 457

8. डा० राम विलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, पृ०438

मुस्लिम लीग की स्थापना का उद्देश्य भी यही रहा, जिसकी नींव सन् 1906 में रखी गयी । चूँकि इसका आधार साम्प्रदायिक था, इस लिए काम भी धर्म के आधार पर नफरत फैलाना था । लीग एक सम्प्रदाय का संगठन बनकर रह गयी । डा0 राम विलास शर्मा ने मुस्लिम लीग पर अपनी टिप्पणी करते हुए कहा है ---- " मुस्लिम लीग के काम करने के तरीके वैसे ही थे जैसे फासिस्टों के होते हैं । नेहरू जी ने कहा कि मुस्लिम लीग के नेता खुल्लम- खुल्लानफरत फैलाते हैं, राजनीतिक विरोधियों को दबाने के लिए गुण्डागर्दी और हिंसा से काम लेते हैं ।"[9] जहाँ एक ओर संकीर्णता एवं घृणा फैलाने में मुस्लिम लीग ने विशेष प्रयास किया, वहीं हिन्दू महा सभा ने हवा देकर उसे भड़काया । साम्प्रदायिक समस्या को जन्म देने एवं उसे उग्र रूप प्रदान करने का काम हिन्दू-मुसलमान शिक्षित, बुद्धिजीवी और महात्वाकांक्षी नेता करते थे ।

प्रेमचन्द का विचार है " वास्तव में जो कुछ मतभेद है, वह केवल शिक्षित समुदाय के अधिकार और स्वार्थ का है । राष्ट्र के सामने जो समस्या है, उसका सम्बन्ध हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी से है । "[10]

जाहिर है कि दोनों समुदायों के उच्चाकांक्षी नेताओं ने अपने हित के लिए जनता की भावनाओं से खिलवाड़ किया । सन् 1957 के प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर साम्राज्य-

---

9. वही पृ0 सं0 439

10. प्रेमचन्द, विविध प्रसंग, पृ0 393

वादी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष किया । लेकिन वे कौन से कारण थे जिसने दोनों सम्प्रदायों के बीच कड़वाहट घोल दी । डा0 राम मनोहर लोहिया के अनुसार " हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का सबसे प्रमुख कारण यह रहा कि लम्बे समय से हिन्दू और मुसलमान के सम्बन्धोंमें पृथकता तथा समीपता की एक भ्रमपूर्ण धारणा चलती रही । जबकि इन्होंने अपने वास्तविक पारस्परिक सम्बन्ध को गहरायी से नहीं देखा । " [11]

यह सच है कि हिन्दू मुसलमानों के बीच वैमनस्य का एक प्रमुख कारण सम्बन्धों की पहचान का अभाव रहा है । इन दोनों समुदायों के बीच दूरी बनाये रखने के लिए साम्प्रदायिक कहे जा सकने वाले कुछ इतिहास-कारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इन इतिहासकारों में देशी व विदेशी दोनों हैं ।

"ब्रिटिश शासकों ने जब हिन्दू और मुसलमानों का समन्वय तोड़ने की नीति पर अमल किया, तो उनके इतिहासकारों और उनके भारतीय चेलों ने मुगल साम्राज्य के दिनों में विभिन्न सामंतों के विद्रोहों को मुसलमानों के खिलाफ हिन्दुओं के युद्ध का रूप दिया और साम्प्रदायिकता को जन्म दिया।"[12]

कुछ भारतीय और विदेशी इतिहासकारों ने हिन्दुस्तान की मिली-जुली संस्कृति पर बल न देकर उसकी विविधता को ही रेखांकित किया । इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत का सांस्कृतिक स्वरूप वैविध्यपूर्ण था लेकिन

---

11. लीला राम गुर्जर, भारतीय समाजवादी चिंतन, पृ0 189
12. राजीव सक्सेना, सापेक्ष, जनवरी-जून 1989, पृ0 40

उसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक ऐक्य का सूत्र था । वस्तुत: इन इतिहासज्ञों के पूर्वाग्रही दृष्टिकोण ने भारत की सांस्कृतिक विरासत को छिन्न-भिन्न कर दिया ।

साम्प्रदायिकता के उद्भव और विकास में भारत की तत्कालीन परिस्थितियों का बहुत योगदान है । मुसलमान शुरू से ही अन्य समुदायों की अपेक्षा प्रत्येक क्षेत्र में पीछे थे । यहाँ तक कि " राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार मध्यम और निम्नमध्य वर्ग के हिन्दुओं और पारसियों में हुआ । लेकिन यह प्रसार उसी मात्रा में मुस्लिम सम्प्रदाय के उसी धरातल के सामाजिक वर्ग में नहीं हुआ ।"[13]

वास्तव में मुसलमानों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण उनकी पुरानपंथी और रूढ़िवादी सोच थी । कट्टरता तो उनमें कूट-कूट कर भरी थी । इसीलिए वे विश्व में हो रहे उथलपुथल और नवीन चिंतन धारा से बिल्कुल कटे हुए थे ।

सन् 1870-80 के बीच ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया । पहले वह हिन्दू-मुसलमान दोनों को उपना कट्टर दुश्मन समझती थी, अब मुसलमानों के प्रति सहानुभूति की कुटिल चाल चलने का निश्चय किया । धर्म के नाम बँटवारे का बीज बो, समाज में जातिगत एवं साम्प्रदायिक भावना उभार कर सतत संघर्ष की नींव डाली ।

---

13. विपिन चन्द्र - स्वतंत्रता संग्राम, पृ0 98

" जिस भी व्यक्ति को भारतीय मामलों की अच्छी जानकारी है वह इस बात से इनकार करने को तैयार नहीं होगा कि ब्रिटिश अफसर-शाही आमतौर पर मुसलमानों का पक्ष लेती है । कुछ हद तक तो यह पक्षपात सहानुभूति के कारण होता है, ज्यादातर इसका उद्देश्य हिन्दू राष्ट्र-वादिता के खिलाफ मुसलमानों को इस्तेमाल करने के लिए किया जाता है।"[14]

वस्तुत: सरकार के इस दृष्टिकोण का मूल उद्देश्य हिन्दू-मुसलमानों को परस्पर संघर्ष की आग में झोंक कर अपनी रोटी सेंकना था । हिन्दू-मुस्लिम एकता सरकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती थी । अत: इस गढ़ को तोड़ना सरकार का पहला काम था ।

तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य का एक पहलू था, कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग को मान्यता न देना । मुस्लिम लीग के नेताओं का कहना था कि लीग एकमात्र पार्टी है जो मुसलमानों के हितों की रक्षा कर सकती है । दूसरी तरफ कांग्रेस सम्पूर्ण भारतीयों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में अपना दावा पेश करती थी । डा0 सूर्य नारायण रणसुभे ने लिखा है —

" कांग्रेस के नेता पाकिस्तान आंदोलन की यथार्थता को समझ नहीं पा रहे थे । उन्हें ऐसा लगता रहा कि यह आंदोलन अंग्रेजों की बदमाशी मात्र है । इसलिए हिन्दू-मुस्लिम समस्या का व्यावहारिक हल खोज सकने में वे असमर्थ रहे । पाकिस्तान को सिद्धान्तत: स्वीकृति देना तो दूर, उन्होंने लीग के अस्तित्व तक को अस्वीकृत कर दिया।" [15]

---

14. रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृ0 464
15. सूर्य नारायण रणसुभे -देश विभाजन और हिन्दी कथा-साहित्य, पृ0 35

इसमें कोई संदेह नहीं कि मुस्लिम लीग अंग्रेजों की शह पाकर पाकिस्तान की मांग कर रही थी । अपने जन्म के प्रारंभिक दिनों से ही लीग ने द्विराष्ट्र के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया था ।

सन् 1937 के प्रांतीय विधान सभा चुनाव में मुस्लिम लीग एक प्रमुख पार्टी के रूप में अस्तित्व में आयी । संयुक्त प्रांत में संयुक्त मंत्रिमंडल बनाने की कोशिश की गयी लेकिन कांग्रेस ने अपनी स्थिति मजबूत समझकर मुस्लिम लीग के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और राजनीतिक भूमिका निभाने के उसके सारे मंसूबों पर पानी फेर दिया । जनवरी 1937 में नेहरू ने जिन्ना के नाम अपने पत्र में लिखा --

" अंतिम विश्लेषण में भारत में आज केवल दो ही शक्तियां हैं, ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व करने वाली कांग्रेस । मुस्लिम लीग मुसलमानों के एक गुट का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें नि:संदेह काफी महत्वपूर्ण लोग हैं लेकिन मुस्लिम लीग का काम केवल उच्चमध्यवर्ग के लोगों तक ही सीमित है और उसका मुस्लिम जनता से कोई आम सम्पर्क नहीं है । " [16]

यह सच है कि मुस्लिम लीग का आम जनता से सम्पर्क न होकर उच्चवर्गीय मुसलमानों से था, लेकिन लीग ने धीरे-धीरे अशिक्षित मुस्लिम जन समुदाय को अपने प्रभाव में लाना शुरू कर दिया था इस बात से इनकार भी

---

16. रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृ0 473

नहीं किया जा सकता । 1937 से 1945 के बीच मुस्लिम लीग की स्थिति काफी सुदृढ़ हुयी । अधिकाधिक मुसलमानों ने इसे समर्थन देना शुरू कर दिया था और 1946 के चुनाव परिणामों से लीग मुसलमानों के प्रतिनिधि-संगठन के रूप में स्थापित हो गयी ।

राजनीतिक गतिविधियों का जनता में प्रचार होने से एक राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और "मुसलमानों के जिस बहुमत में नयी राजनीतिक चेतना का संचार हुआ था, उसने राजनीतिक संगठन के रूप में मुस्लिम लीग में शामिल होना पसंद किया था ।" [17]

मुस्लिम लीग का प्रभाव बढ़ने, कांग्रेस में कम मुसलमानों के आने के पीछे कांग्रेस की कुछ राजनीतिक, संगठनात्मक और कार्यनीति सम्बन्धी कमजोरियाँ रहीं । " कांग्रेस ने गंभीरता के साथ मुस्लिम जनता तक पहुँचने और उससे अपील करने की कोई कोशिश नहीं की । कांग्रेस का कार्यक्रम हालांकि असाम्प्रदायिक था और इस संगठन में अनेक प्रमुख देशभक्त मुसलमान शामिल थे, फिर भी कांग्रेस के काफी प्रचार में तथा खासतौर पर दक्षिणपंथी नेताओं और गांधी के प्रचार में हिन्दू धर्म की एक गंध बनी रहती थी जो मुसलमान जनता को कांग्रेस की ओर आकर्षित होने से टरोक देती थी । "[18]

17· रजनी पामदत्त, आज का भारत पृ0 474

18· वही, पृ0 475

गाँधी जी पक्के हिन्दू थे लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह मुसलमान विरोधी थे। मुसलमानों के प्रति उनके मन में प्रेम था सर्व-धर्म समभाव में विश्वास करने वाले गाँधी ने मुसलमानों के हितों को कभी नजर-अंदाज नहीं किया। यह भी सच्चाई है कि कांग्रेस में कुछ कट्टर कहे जाने वाले हिन्दू भी शामिल हो गये थे, जिससे उसके धर्म-निरपेक्ष स्वरूप पर प्रश्न-चिह्न लगाया जा रहा था। यदि मुस्लिम लीग और कांग्रेस को एक धरातल पर खड़ा कर देखें तो कह सकते हैं कि " मुस्लिम लीग विशुद्ध मुस्लिम संगठन थी, कांग्रेस उसी तरह विशुद्ध हिन्दू संगठन नहीं थी, पर अशुद्ध हिन्दू संगठन तो थी ही। "[19]

मुस्लिम लीग की स्थापना का आधार ही साम्प्रदायिक था, जबकि कांग्रेस साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए एक उचित मंच के रूप में बनायी गयी थी। कांग्रेस में हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी धर्मों के लोग शामिल हुए थे किन्तु बाद में चलकर जब मुस्लिम लीग बनी, तो अधिकांश मुसलमान उसकी ओर आकृष्ट हुए, तथापि कुछ राष्ट्रवादी मुसलमानों ने कांग्रेस को नहीं छोड़ा। बाद के दिनों में लीग के नेताओं ने कांग्रेस को एक हिन्दू संगठन कहना आरम्भ कर दिया। लीग समर्थक नेताओं ने आरोप लगाया कि कांग्रेस मुस्लिम हितों की रक्षा नहीं कर सकती, न ही उसके प्रति कोई चिंता है।

---

19. राम विलास शर्मा- भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, पृ0 402

मुस्लिम लीग ने कांग्रेस विरोधी अभियान चलाकर एक तरफ राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर कर ब्रिटिश सत्ता का समर्थन किया, दूसरी ओर मुस्लिम जनता में अपने प्रभाव-विस्तार की जी तोड़ कोशिश की । इस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन का समूचा परिदृश्य ही बदल गया । जहाँ भारतीय जनता एक जुट होकर साम्राज्यवादी सरकार से मुक्ति संघर्ष कर रही थी, अब उसे ब्रिटिश सत्ता तथा मुस्लिम लीग दोनों के प्रहार का सामना करना पड़ा ।

सन् 1920-22 के असहयोग आंदोलन का नेतृत्व गाँधीजीकर रहे थे - एक संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन के नेता के रूप में । उसी समय उन्होंने अपने को सनातनी हिन्दू होने की घोषणा खुले मंच से कर दी । मुसलमानों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा । नेहरू ने सनातनी शब्द पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा ---

" सनातनी लोग जिस रफ्तार से पीछे की ओर चल रहे हैं, उससे हिन्दू महासभा मात खा गई है । सनातनियों में धार्मिक कट्टरता के साथ ब्रिटिश सरकार के प्रति बहुत तेज या कम से कम काफी जोरदार शब्दों में प्रकट की जाने वाली वफादारी भी होती है । "[20]

इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागेदारी करने वाले गाँधीजी की छवि हिन्दू पुनरूत्थान के एक नेता के रूप में बन गई । इससे आम मुसलमान

20· रजनी पामदत्त, आज का भारत पृ0 476

कांग्रेस की ओर से अनाकृष्ट होने लगे । सन् 1940 में लीग द्वारा पाकिस्तान प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से मुसलमान इस्लामिक राष्ट्र का स्वप्न देखने लगे । जिस तरह से मुसलमानों ने मुस्लिम लीग को समर्थन देना शुरू कर दिया था, उससे राजनीतिक मंच पर वह मुसलमानों का नेतृत्व करने वाली एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरकर आयी ।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हिन्दू मुहावरों का इस्तेमाल, राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए गणेश पूजा का आयोजन, गंगा में डुबकी लगाकर बंग-भंग के खिलाफ किया गया आंदोलन तथा सबसे बढ़कर साहित्य और इतिहास में यवनों म्लेच्छों के रूप में मुसलमानों का उल्लेख, मुसलमान शासकों का अत्याचारियों के रूप में वर्णन मुस्लिम जनता में आक्रोश फैला रहा था और राष्ट्रीय आंदोलन से विमुख कर रहा था ।

क्रिप्स मिशन की असफलता के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने यह तर्क देना शुरू कर दिया कि कांग्रेस सम्पूर्ण भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती । राष्ट्रीय आन्दोलन के क्षितिज पर गाँधी जी एक महत्वपूर्ण नेता के रूप में उभर कर आये और कांग्रेस का नेतृत्व संभाला ।

कांग्रेस ने 8 अगस्त 1942 को एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें कहा गया था कि भारत में एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना देश की प्रमुख पार्टियों को मिलाकर की जाए । लेकिन इस प्रस्ताव से राष्ट्रीय आंदोलन

को कोई लाभ नहीं मिला वरन् वह साम्राज्यवादियों के जाल में जा फंसा। राष्ट्रीय आंदोलन के नेता प्रस्ताव के बाद वायसराय के साथ शांति वार्ता की तैयारियां कर रहे थे, किन्तु साम्राज्यवादी कुचक्र से बचने के लिए कोई प्रयास नहीं कर रहे थे। कुछ कांग्रेसियों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान कम्युनिष्ट पार्टी का दृष्टिकोण अलग था। इसका विचार था कि कांग्रेस, मुस्लिम लीग और अन्य पार्टियों को मिलाकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया जाए और एक ही मंच से फासिस्टवाद का मुकाबला किया जाए। जनता को एक सूत्र में बाँधकर पूरी ताकत से ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ संघर्ष करने पर बल दिया गया, लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी के इस प्रस्ताव को किसी तरह का समर्थन नहीं मिल सका। इसका सबसे बड़ा कारण भारतीय नेतृत्व में साम्प्रदायिक आधार पर वैमनस्यता और फूट थी। कम्युनिष्टों ने असहयोगनीति का भी विरोध किया।

9 अगस्त 1942 को सभी प्रमुख कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी हुयी और कांग्रेस को गैरकानूनी संगठन घोषित कर दिया गया। इसके विरोध में देश भर में प्रदर्शन हुए तथा असंगठित संघर्ष शुरू हुआ, जिसका सरकार ने निर्ममता से दमन किया। इस घटना के पश्चात् राष्ट्रीय आंदोलन में संगठित नेतृत्व के अभाव में विघटन की स्थिति पैदा हो गयी। इसी समय मुस्लिम लीग ने अपने प्रभाव का विस्तार किया।

6 मई 1944 को गाँधी जी की रिहाई हुई किन्तु सरकार ने

अगस्त प्रस्ताव वापस लेने तक किसी प्रकार के समझौते से इनकार कर दिया ।

14 जून 1945 को सरकार ने एक नये प्रस्ताव की घोषणा कर दी जिसमें अस्थायी सरकार बनाने की योजना शामिल थी लेकिन इसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधित्व के बारे में कोई स्पष्ट संकेत नहीं था । कांग्रेस और मुस्लिम लीग की बराबरी के स्थान पर सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की बराबरी जैसी साम्प्रदायिक शब्दावली का प्रयोग किया गया था ।

जून 1945 में कांग्रेस, मुस्लिम लीग एवं अन्य पार्टियों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन शिमला में आयोजित हुआ, लेकिन इसमें गतिरोध पैदा हो गया । संयुक्त मोर्चा बनाने के स्थान पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेता एक दूसरे के विरुद्ध आग उगलने लगे । इस तरह शिमला सम्मेलन असफल हो गया ।

एक तरफ ब्रिटिश नीति का अध: पतन हो रहा था, दूसरी तरफ कांग्रेस और लीग के बीच अन्तर्विरोध बढ़ता ही जा रहा था । अब दोनों दलों के नेताओं ने ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ कोई मोर्चा बनाने से अच्छा और आसान काम एक दूसरे के विरुद्ध शिकायत करना समझा और सरकार से अकेले समझौता करना समझा ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जो जन विद्रोह हुए, उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन का उचित नेतृत्व नहीं मिल सका । कलकत्ता, बम्बई और अन्य प्रमुख

शहरों में हुए विशाल प्रदर्शनों में जनता ने कांग्रेस, मुस्लिम लीग और कई स्थानों पर कम्युनिष्ट पार्टी के झंडे फहराये ।

फरवरी 1946 में भारतीय नौसेना के विद्रोह के समर्थन में जन आंदोलनों की लहर आ गयी । बम्बई के तमाम मजदूरों ने इसमें भाग लिया। नाविकों का यह विद्रोह बम्बई के अतिरिक्त कराँची और मद्रास तक फैल गया । "जय हिन्द, "इन्कलाब जिन्दाबाद, हिन्दू-मुस्लिम एक हों, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश हो, हमारी माँगें पूरी करो, आई॰एन॰ए॰ के लोगों को और राजनीतिक बंदियों को रिहा करो जैसे नारों की गूँज पूरे देश में सुनाई पड़ती थी ।

TH-3612

विद्रोही नाविकों को कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं से सम्पर्क करने के बावजूद कोई समर्थन नहीं मिला जबकि बम्बई की ट्रेड युनियनों और कम्युनिष्ट पार्टी ने नौसेना की हड़ताल का समर्थन किया । इस आंदोलन का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था जिसमें सेना के जवान भी शामिल होने लगे थे और अन्य जनता के साथ सहयोग कर रहे थे तभी कुछ राष्ट्रीय नेताओं के रुख में परिवर्तन आया । कांग्रेस और मुस्लिम लीग के उच्चवर्गीय नेता जनांदोलनों के विरुद्ध हो गये और कानून तथा व्यवस्था के नाम पर सरकार का पक्ष लेने लगे ।

सन् 1946 के चुनाव-परिणामों से ज्ञात होता है कि देश का जनमत

DISS
0,152,3,N3,S,1:g(Q)
152N1

दो बड़े राजनीतिक संगठनों कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के साथ था । छोटे राजनीतिक गुटों का अस्तित्व अपेक्षया समाप्त हो गया था जिसमें हिन्दू महासभा, पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी और मद्रास की जस्टिस पार्टी सम्मिलित हैं । जबकि प्रांतीय विधानसभाओं में कम्युनिष्ट पार्टी को आंशिक सफलता मिली ।

मार्च 1946 में कैबिनट मिशन भारत आया । उसने गर्वनरों, राजाओं एवं कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा अन्य संगठनों से बातचीत करने के पश्चात् कांग्रेस-लीग मतभेदों को दुनिया के समक्ष प्रस्तुत किया । इस प्रकार मतान्तर को ही भारत की आजादी के लिए सबसे बड़ी बाधा बताया । अब मुस्लिम लीग पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न पाकिस्तान की माँग करने लगी थी। " कायदे आजम जिन्दाबाद, पाकिस्तान जिन्दाबाद" जैसे नारे लीगियों की जुबान पर तैरते रहते थे।

कांग्रेस और मुस्लिम के बीच दरार बढ़ती ही गयी । अंत में कांग्रेसी नेताओं ने महसूस किया कि बिना भारत-विभाजन के आजादी संभव नहीं । अत: कुछ बड़े कांग्रेसी नेताओं ने इस प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी ।

अगस्त 1947 में भारत विभाजन के पश्चात् सम्पूर्ण देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए । पंजाब और बंगाल में इसका अधिक प्रभाव पड़ा । वहाँ मुसलमानों की आबादी अधिक थी । हत्या, बलात्कार, लूट, आगजनी से देश में भूकम्प-सा आ गया । हिन्दू-मुसलमान धर्मान्ध होकर एक दूसरे को बरबाद कर रहे थे ।

सामाजिक पृष्ठभूमि :

ब्रिटिश शासन काल में भारत की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय थी । सरकारी संरक्षण प्राप्त सामंतों एवं जमींदारों का शोषण-चक्र जारी था । विभिन्न सामाजिक रूढ़ियोंमेंआबद्ध जनता इन आतताइयों के जुल्म का शिकार हो रही थी । गरीब हिन्दू- मुसलमान सभी एक जैसी जमींदारी प्रथा के शिकार थे, महाजनों के कर्ज का बोझ लिए हुए ।

भारत एक कृषि प्रधान देश है । यहाँ की अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर रहती है । ब्रिटिश शासन काल में किसानों की स्थिति सबसेअधिक दयनीय थी । प्रेमचन्द जी का "होरी" इसी शासन व्यवस्था में किसान से मजदूर बनने के लिए विवश हुआ । किसान की सारी पैदावार महाजनों का कर्ज चुकाने में ही शेष हो जाती । फिर पूरे वर्ष उन्हें रोटियों के लाले पड़ जाते । किसानों के शोषण की इतनी जबर्दस्त प्रणाली शायद ही कहीं विकसित हुई हो । साम्राज्यवादी प्रभुत्व के रक्षात्मक कवच के भीतर परोपजीवी सामंतों का उदय हुआ, जिससे न केवल किसानों पर बोझ बढ़ा, वरन् गरीबी और कर्ज में आकंठ डूबे रहने के लिए विवश हुए । कभी-कभी जमीन से बेदखली उन्हें मर्मान्तिक पीड़ा देती थी ।

अगस्त 1942 में ब्रिटिश सरकार द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रहार किया गया । इसके साथ ही देश की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर भी

बुरा असर पड़ा । जमींदारों, व्यापारियों तथा जमाखोरों ने भ्रष्ट नौकरशाही के साथ मिलकर करोड़ों लोगों के जीवन के साथ खिलवाड़ किया । गाँवों की किसान जनता बड़े पैमाने पर अकाल-विनाश का शिकार हुई ।

भारतीय समाज में जाति, धर्म, भाषा एवं सम्प्रदाय के स्तर पर अनेक बुराइयाँ मौजूद थीं । समाज में अशिक्षा के कारण रूढ़िवादी प्रवृत्तियाँ हावी थीं । छुआछूत, साम्प्रदायिक भेदभाव, निरक्षरता और इस तरह की तमाम बुराइयों के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन संघर्ष कर रहा था । जबकि सरकार की तरफ से सुधार संबंधी इन योजनाओं को विफल करने का प्रयास किया जा रहा था । किसी भी साम्राज्यवादी शासन को कायम रखने के लिए इस तरह की विषमता का होना शासक वर्ग के हक में अच्छा होता है । अंग्रेजी शासन में भी भारतीय समाज की यही स्थिति थी ।

साम्प्रदायिकता की समस्या उन क्षेत्रों में अधिक गंभीर थी जहाँ ब्रिटेन का प्रत्यक्ष शासन था । जातिगत विद्वेष अपने चरमोत्कर्ष पर था । अशिक्षा के कारण अछूतों एवं दलितों का जीवन-स्तर अत्यंत निम्न था जबकि आबादी में निरंतर वृद्धि होती जा रही थी । समाज में अछूतों के प्रति उच्च वर्गों के मन में जो घृणा-भावना थी वह उनके शोषण और उत्पीड़न में स्पष्ट झलकती है ।

राष्ट्रीय आंदोलन ने इन समस्याओं को लेकर संघर्ष किया गाँधी जी के आंदोलन के प्रभाव स्वरूप दक्षिण भारत के मंदिरों के दरवाजे अछूतों के लिए खोल दिए गए ।

अंग्रेजों के आने से पूर्व अछूतों की जो स्थिति थी, वही ब्रिटिश शासन काल में थी लेकिन कुछ नेताओं ने जब इसके खिलाफ संघर्ष शुरू किया तो स्थितियाँ धीरे-धीरे बदलने लगीं ।

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में कुछ शिक्षित स्वार्थी लोगों ने अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए अनेक समस्याएँ खड़ी कीं । इन शिक्षितों की सरकारी मशीनरी में घुसपैठ भी थी । शासन स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश था। जनता की आर्तनाद सुनने के लिए तैयार नहीं था । जन सामान्य सामाजिक-आर्थिक अन्याय से संत्रस्त था । समाज में सभी धर्मों के लोग इसी परिवेश में जी रहे थे । शिक्षित - अशिक्षित, धनी-गरीब, शासक-प्रजा, हिन्दू मुसलमान दोनों में थे लेकिन कुल मिलाकर दोनों के जीवन-स्तर में समानता भी देखी जा सकती थी । प्रो विपिन चन्द्र ने लिखा है --

"यद्यपि हिन्दू और मुसलमान भिन्न धर्मों के अनुयायी थे उनके आर्थिक और राजनीतिक हित एक जैसे थे । सामाजिक और सांस्कृतिक तौर पर भी हिन्दू और मुसलमान जनता तथा वर्गों ने जीवन के समान तौर-तरीके विकसित किये थे । एक बंगाली मुसलमान और एक बंगाली हिन्दू

के बीच जितनी समानताएँ थीं, उतनी एक बंगाली मुसलमान और पंजाबी मुसलमान के बीच नहीं थीं । "[35]

साम्प्रदायिकता को समग्र भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो ज्ञात होता है कि उसका एक प्रमुख कारण मुसलमानों का चतुर्दिक पिछड़ापन था । शिक्षा, उद्योग; व्यापार तथा अन्य क्षेत्रों में मुसलमान हिन्दुओं, सिक्खों या पारसियों की अपेक्षा पीछे थे । उन्नीसवीं सदी के दौरान मुस्लिम उच्च-वर्ग रूढ़िवादी तथा आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा का विरोधी था, जिससे देश में मुस्लिम शिक्षितों की संख्या कम होना स्वाभाविक था । उधर विज्ञान, जनतंत्र और राष्ट्रवादिता पर बल देने वाली विचारधारा के अभाव में मुसल-मान परम्परावादी एवं जड़ बने रहे । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दुओं के विरुद्ध उनके अंदर घृणा उभर कर सामने आयी और उन्होंने अपना वास्तविक शत्रु हिन्दुओं को मान लिया । इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए प्रो० विपिन चन्द्र लिखते हैं ---

"हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्यम वर्ग के विकास में एक पीढ़ी का, बल्कि उससे भी अधिक अंतर रहा है । वह अंतर राजनैतिक, आर्थिक तथा बहुत सी दिशाओं में अभी भी दिखायी दे रहा है । यह कमी ही वह कारण है जो मुसलमानों में भय के मनोविज्ञान को पैदा करती है ।"[36]

35· विपिन चन्द्र, स्वतंत्रता संग्राम पृ० 200

36· विपिन चन्द्र, स्वतंत्रता संग्राम पृ० 103

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मुसलमानों की अवनीत स्वयं उनकी धार्मिक रूढ़ियों एवं दूषित परम्पराओं के कारण हुयी थी । इसके लिए दूसरे सम्प्रदायों पर दोषारोपण नहीं किया जा सकता ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में मुसलमानों के विकास के लिए जो प्रयत्न हुए, उनसे उनमें शिक्षा के प्रति जागृति आयी । उद्योग एवं व्यापार में भी अब वे हिस्सा लेने लगे । उनकी अशिक्षा के कारण प्रतिक्रियावादी तत्वों ने उनको अपने स्वार्थ-साधन का मोहरा बनाया । हिन्दू-मुसलमान दोनों की सामंती ताकतें जनता पर अपना दबदबा बनाये हुए थीं क्योंकि प्रतिक्रियावादी संस्कारों की वजह से दोनों में साम्य रहता था ।

मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा दोनों साम्प्रदायिक संस्थाएं वस्तुत: मध्यवर्गीय धनिकों, पदलोलुपों एवं चाटुकारों की हैं ।इन्होंने मात्र अपने स्वार्थ के लिए ब्रिटिश शासन को समर्थन दिया । ब्रिटिश सरकार ने जहाँ तक संभव हो सका, भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक ऐक्य को तोड़ने की कोशिश की । इसके अलावा उन्होंने सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रबल शत्रु प्रतिक्रियावादी शक्तियों से हाथ मिलाया । साम्राज्यवादी शासन की सफलता के कारणों को रेखांकित करती हुयी रजनी पामदत्त लिखती हैं—

" साम्राज्यवादी शासन के अंतर्गत भारत जैसे किसी समाज के लिए, जहाँ का विकास रुक जाना ही खास विशिष्टता हो, लाजिमी तौर

पर समाज की रूढ़िवादी शक्तियाँ अपनी अंदरूनी ताकत के कारण महत्वपूर्ण हो जाती हैं । इन्हीं पतनोन्मुख शक्तियों के कारण साम्राज्यवादियों की विजय संभव हो सकी है । "37

ब्रिटिश शासन काल में जमींदार एवं व्यापारी जनता की गाढ़ी कमाई की बदौलत सुख भोग कर रहे थे । बंगाल और पंजाब की स्थिति कुछ भिन्न थी । वहाँ अधिकांश हिन्दू जमींदार, व्यापारी और महाजन थे, जबकि मुसलमान प्राय: गरीब किसान के रूप में, महाजनों के कर्जदार के रूप में । इन विषम परिस्थितियों में जी रही गरीब एवं दलित जनता ने जब अपने जीवन-मूल्यों के रक्षार्थ सामान्य सामाजिक जीवन जीने के लिए संघर्ष किया तो उसका बलपूर्वक दमन किया गया । इसका एक दूसरा पहलू भी था जिसके बारे में रजनी पामदत्त ने लिखा है ---

"बार-बार जिसे "साम्प्रदायिक झगड़ा" या साम्प्रदायिक विद्रोह कहा गया है उसके पीछे हिन्दू जमींदारों के खिलाफ मुसलमान किसानों का संघर्ष रहा है अथवा हिन्दू महाजनों के खिलाफ मुसलमान कर्जदारों का संघर्ष रहा है अथवा हड़ताल तोड़ने के लिए बुलाए गये पठानों के खिलाफ हिन्दू मजदूरों का कोई संघर्ष रहा है । "38

इस प्रकार सबल के विरुद्ध निर्बल का यह संघर्ष मजदूरों-किसानों

37· रजनी पामदत्त, आज का भारत, पृ0 443

38· वही, पृ0 468

की एकता का परिणाम रहा । साम्राज्यवादी-प्रतिक्रियावादी शक्तियों के लिए इस ऐक्य-भावना से प्रबल खतरा उत्पन्न हो गया था । वे इसे छिन्न-भिन्न करने की कोशिश करती रहीं ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता से सशंकित होकर अंग्रेजों ने इसे खण्डित करने की अनेक चालें चलीं । उनके इतिहासज्ञों ने भारतीय इतिहास को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया । प्राचीनकाल को हिन्दू युग तथा मध्य काल को मुस्लिम युग कहा । मध्यकालीन इतिहास में हिन्दुओं के विरुद्ध मुस्लिम शासकों की ज्यादतियों का हवाला देते हुए उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का एक दीर्घ अध्याय रचा । कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी इसी राग में अपना राग मिलाया ।

सन् 1939 के परवर्तीकाल में साम्प्रदायिक शक्तियों ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था । धर्म व्यक्ति के निजी जीवन से हटकर और धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति में लग रहा था । धर्म एवं सम्प्रदाय के आधार पर भारत को विभाजित करने की कूटनीति बनायी जा रही था । वस्तुत: भारत को दो राष्ट्रों में बाँटने की कोशिश अलोकतांत्रिक तथा स्वातंत्र्य-प्रिय जनता की आकांक्षा के सर्वथा विपरीत थी ।

कुछ विद्वान् स्वातंत्र्य आंदोलन कालीन साम्प्रदायिकता का मूल कारण धर्म को मानते हैं । यूँ तो मुगलकालीन हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की ओर

दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि ये संघर्ष राजनीतिक सत्ता के लिए हुए और मात्र शासकों के बीच । आम जनता के विरुद्ध किसी मुस्लिम शासक ने संघर्ष नहीं किया । अत: आधुनिक सन्दर्भ में धर्म की भूमिका राजनीतिक घटना बनकर रह जाती है । प्रो० विपिन चन्द्र का विचार है ---

"धर्म साम्प्रदायिकता का कारण नहीं बनता, हालाँकि सभी तरह के साम्प्रदायिकतावादी धार्मिक मतभेदों का इस्तेमाल करते हैं । इन मतभेदों का इस्तेमाल उन सामाजिक आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, संघर्षों इत्यादि को ढकने या विकृत रूप में पेश करने के लिए किया जाता है, जिनका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है । साम्प्रदायिकता के दायरे में धर्म उसी हद तक आता है, जिस हद तक वह गैर धार्मिक मामलों में राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है ।"[39]

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि धर्म का उपयोग संघर्ष के लिए भावनात्मक रूप से तैयार करने के लिए किया जाता है ।

प्रगतिशील विचारकों एवं इतिहासकारों ने साम्प्रदायिक संघर्ष के मूल में आर्थिक असमानता को स्वीकार किया है । पंजाब और बंगाल के हिन्दू-मुसलमानों के बीच गहरी आर्थिक विषमता थी, जिसने 1947 के

---

39. विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, पृ० 383

आसपास साम्प्रदायिक संघर्ष को आधार प्रदान किया। पं0जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है - "मालगुजारी की वसूली में बेहद कड़ाई के कारण सभी जगह और विशेषकर बंगाल में यह नतीजा हुआ कि पुराने जमीन के मालिक बरबाद हो गए और उनकी जगह नये मालदार व्यापारियों ने ले ली । इस तरह बंगाल मुख्यतया हिन्दू जमीदारों को प्राप्त हो गया और यद्यपि उनके काश्तकार हिन्दू-मुसलमान दोनों थे, तथापि उनमें अधिकतर मुसलमान ही थे ।"[40]

इससे स्पष्ट होता है कि मुस्लिम जनता की तत्कालीन आर्थिक स्थिति अधिक शोचनीय थी। उनके मन में यह बात बैठ गयी कि हिन्दू जानबूझ कर उनकी प्रगति में बाधक बन रहे हैं और आर्थिक वैषम्य का दोष हिन्दुओं के सिर मढ़ा जाने लगा ।

हिन्दू मुसलमानों के साथ अछूतों जैसा व्यवहार करते थे जिससे मुसलमान हीन भावना के शिकार हुए ।

सामाजिक-वंचन,अपनी पहचान खो जाने का जो भय मुसलमानों में व्याप्त हो गया था उसने हिंसा के वातावरण को पैदा किया । साम्प्रदायिकता की वृद्धि में एक बड़ा कारण समाज में उँच-नीच का भेदभाव और दोषपूर्ण व्यवहार था, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रविरोधी-साम्राज्यवादी चेतना का देश में विकास और प्रसार हुआ ।

---

40. जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ0 228

द्वितीय अध्याय

तमस में साम्प्रदायिकता का स्वरूप : एक विश्लेषण

" द्वितीय अध्याय "

"तमस" में साम्प्रदायिकता का स्वरूप : एक विश्लेषण

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आज भारत एक अँधेरी गुमनाम गली में भटक रहा है । इसके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अनेक कारण हैं । धार्मिक उन्माद से प्रसूत साम्प्रदायिकता का तमस भारतीय मानस को आज भी आवृत्त किए हुए है ।

भीष्म साहनी का उपन्यास "तमस" स्वतंत्रता पूर्व पश्चिमोत्तर भारत के निवासी हिन्दू-सिखों एवं मुसलमानों के पारस्परिक वैमनस्य, उसके कारणों, परिणामों एवं उससे जुड़े अनेक संदर्भों को यथार्थवादी ढंग से उजागर करता है । यह कृति साम्प्रदायिकता के जिस तमस का वस्तु-चित्रण है वह आज भी अपनी समस्त विभीषिका के साथ समाज में व्याप्त है । यह रचनात्मक कृति पाठकों को सचेत करती हुई धर्म, संस्कृति, परंपरा, इतिहास और राजनीति जैसी परिकल्पनाओं का सहारा लेकर अपना खेल खेलने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियों की संकीर्ण मानसिकता और कायर अमानवीय दृष्टिकोण का बेबाक चित्र प्रस्तुत करती है ।

कट्टरपंथी मतान्धता के मूल में समुदाय या धर्म के प्रति सच्चा प्रेम या आस्था की भावना नहीं होती । वरन् इसमें कुटिल स्वार्थों की राजनीति छिपी होती है । सच तो यह है कि साम्प्रदायिक उन्माद का शिकार गरीब

होते हैं , चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान । अमीर तो इस आग से बेदाग बच निकलते हैं । साम्प्रदायिकता की जड़ें भारतीय समाज में इतनी गहरी हैं कि अराजक तत्वों द्वारा किंचित् हवा दिए जाने पर भीषण विस्फोट का रूप धारण कर लेती हैं ।

"तमस" ऐसे भयानक षड्यंत्र में पिसते हुए लोगों की कहानी है जो स्वयं अपने इतिहास को नहीं जानते । यह कथा उपन्यासकार की कल्पना नहीं, वरन् एक कटु सत्य है जिसे स्वयं लेखक ने भोगा है । भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन के अंतिम दिनों में देश-विभाजन की घोषणा से उत्पन्न साम्प्रदायिक आग में देश के पूर्वी और पश्चिमोत्तर भाग जल उठे । कलकत्ता नोआखाली, और पंजाब में भीषण तबाही के पश्चात् लाखों बेघर हुए और अपने पुरखों की धरती छोड़ने को विवश हुए । हिंसा, लूट एवं बलात्कार के निर्मम नग्न ताण्डव से मानवता कराहने लगी । विभाजन से देश के इतिहास में एक करुण, किंतु वीभत्स अध्याय जुड़ गया । "तमस" इन्हीं समस्त घटनाओं का बेबाकी से किया गया वर्णन है ।

"तमस" में चाटुकार मुराद अली के कहने से नत्थू द्वारा सूअर मरवाकर मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंक देने की घटना को लेकर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है । इस उपन्यास में साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध न केवल राजनीति से दिखाया गया है, वरन् साम्प्रदायिकता और धार्मिक-चेतना

संस्कृति, इतिहास और आबादी का भी साम्प्रदायिकता से सम्बन्ध देखा जा सकता है । साथ ही तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक पहलू को भी नजर-अन्दाज नहीं किया गया है ।

1. साम्प्रदायिकता और राजनीति :

आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता और राजनीति को एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता । भारत में स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान सम्प्रदायकेन्द्रित राजनीति का प्रादुर्भाव हुआ । मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक दल राष्ट्रीय आंदोलन के दिनों में अस्तित्व में आए । कांग्रेस इन दिनों प्रमुख राजनीतिक दल के रूप में स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व कर रही थी । इसके अतिरिक्त वामपंथी विचारधारा का भी प्रवेश हो चुका था । इस तरह स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में जिन प्रमुख राजनीतिक दलों का अस्तित्व कायम हुआ उनमें कांग्रेस, मुस्लिम-लीग, कम्युनिस्ट एवं हिन्दू महासभा शामिल हैं ।

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् स्वातंत्र्य चेतना की जो लहर आयी, उसकी अंतिम परिणति 15 अगस्त 1947 की आजादी के रूप में हुई । लेकिन भारत को यह आजादी अखण्ड भारत के रूप में नहीं मिली । भारत और पाकिस्तान दो स्वतंत्र राष्ट्रों का अभ्युदय हुआ । ठीक उसी समय, जब भारत विभाजन की घोषणा ब्रिटिश सरकार ने की, देश में साम्प्रदायिक दंगे

बड़े पैमाने पर शुरू हो गए । सत्ता का समूचा-तंत्र इस खूनी होली से बेखबर रहा । उसने अपनी शक्ति का उपयोग तब किया, जब सब कुछ उजड़ चुका था, लोगों के दिलों से मानवता जा चुकी थी, अराजकता का साम्राज्य फैला हुआ था, आँसुओं की धार सूख चली थी, हत्या और बलात्कार जैसे क्रूर-अमानवीय कृत्यों से मानवता एक बार पुन: कलंकित हो चुकी थी ।

"तमस" में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड को एक चतुर राजनीतिज्ञ और ब्रिटिश नीतियों का अक्षरश: पालन करने वाले कुशल प्रशासक के रूप में दिखाया गया है । रिचर्ड भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व के गहन अध्येता के रूप में तक्षशिला के अवशिष्ट खंडहरों में रूचि लेता है । साथ ही वह लीजा के मन में भी इसके प्रति आकर्षण उत्पन्न करने की असफल चेष्टा करता है । इन खण्डहरों में परिभ्रमण करता रिचर्ड का मानस सजीव भारत के खण्डहरों में बदलते आसानी से देख लेता है । सन् 1947 के हिन्दू-मुस्लिम दंगे रिचर्ड के लिए पुरातात्विक अन्वेषण के विषय बन जाते हैं ।

उपन्यास के आरंभ में नत्थू नाम के चमार को सूअर मारते हुए दिखाया गया है । नत्थू यह सूअर म्युनिस्पैलिटी के कारिन्दे मुराद अली के कहने पर मारता है । नत्थू सूअर मारने के लिए पहले तो तैयार नहीं होता किंतु मुराद अली ने जब पाँच रूपये का नोट उसकी थैली में ठूँसते हुआ कहा---
"हमारे सलातरी साहब को एक मरा हुआ सूअर चाहिए,डाक्टरी काम के लिए।"[1]

---

1. तमस -- भीष्म साहनी, पृ0 8

तब नत्थू को विवश होकर यह काम करना पड़ता है । मुराद्अली से उसे यह भी डर है कि अस्वीकार की स्थिति में वह कुछ भी करा सकता है । यहाँ तक कि उसे मरे जानवरों की खाल दिलवाना बंद कर दे या पिटवा दे । ऐसी स्थिति में नत्थू अपनी परिस्थिति का आकलन करते हुए इनकार नहीं कर सकता था ।

रिचर्ड भारतीय कला का पारखी एवं इतिहास का मर्मज्ञ है । उसे भारतीय संस्कृति में रूचि है । किंतु, जब वह प्रशासक की कुर्सी पर बैठता है तो ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि के रूप में लन्दन से निर्णीत होकर आने वाली नीतियों को क्रियान्वित करता है । " प्रशासन के क्षेत्र में उसकी निजी मान्यताओं का कोई दखल नहीं था, बल्कि वे असंगत थीं । यह विचार कि हमारा आचरण हमारी मान्यताओं के अनुरूप होना चाहिए, एक ऐसा भोंडा आदर्शवाद है जिससे सिविल सर्विस में नाम लिखाते ही अफसर अपना पिंड छुड़ा लेता है । " [2]

विवशता

इन शब्दों में रिचर्ड की विडम्बनात्मक को देखा जा सकता है । दूसरे शब्दों में, एक संवेदनशील व्यक्ति को परिस्थितियों के दबाव में असंगत काम करना पड़ता है जो उसके विचार और व्यवहार के बीच अंतर्विरोध को अभिव्यक्त करते हैं । रिचर्ड भले ही भारतीय कला एवं इतिहास में रुचि दिखाता है , किंतु वह इसकी रक्षा के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता । वह दंगों को

2· तमस — भीष्म साहनी, पृ0 41

रोकने के लिए तत्काल अपने प्रशासनिक अधिकारों का प्रयोग नहीं करता । फलस्वरूप साम्प्रदायिक हिंसा अपने दामन में अनगिनत लोगों को समेट लेती है । अंग्रेज इंसाफ पसंद और गरीब परवर होते हैं तथा धार्मिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते, लोगों के मन में इस भ्रम को बनाए रखना अंग्रेजों की कूटनीति की एक कटु सच्चाई थी । "तमस" में रिचर्ड ने इसी कूटनीति का अनुसरण किया है । ब्रिटिश शासन की नीति का मूलसूत्र समझाते हुए रिचर्ड लीजा से कहता है ---" हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौन सी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में है कि वे किन-किन बातों में एक दूसरे से अलग हैं ।"[3]

यकीनन, ब्रिटिश शासन तंत्र भारतीय जनता के उस ऐक्य और सौहार्द्रपूर्ण जीवन को नष्ट करना चाहता है जहाँ लोग पारस्परिक प्रेम और विश्वास के साथ जी रहे होते हैं । शासक वर्ग के मूल्य मानवीय मूल्यों से सर्वथा भिन्न होते हैं । मानवीय मूल्य जहाँ जनता के हितों को सर्वोपरि मानते हैं, शासकीय मूल्य शोषण की विकृत मानसिकता से ग्रसित होते हैं । रिचर्ड कहता है --" मानवीय मूल्यों का कोई महत्व नहीं होता वास्तव में महत्व केवल शासकीय मूल्यों का होता है ।"[4] यहाँ आम आदमी की मासू-मियत का कोई मूल्य नहीं वरन् कूटनीति के छल-कपट प्रयोग में लाए जाते हैं ।

3· तमस -- भीष्म साहनी पृ० 45

4· वही, पृ० 115

लीजा जब रिचर्ड से हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष को निपटाने की बात करती है और अत्यन्त अधीर होकर यह कहती है कि — "तुम उनसे यह भी कहना कि तुम एक ही नस्ल के लोग हो, तुम्हें आपस में नहीं लड़ना चाहिए, तुमने मुझे यही बताया था न रिचर्ड ।[5] तो उसके प्रश्न का उत्तर न देकर रिचर्ड लीजा से प्रतिप्रश्न करता है --"क्या यह अच्छी बात होगी कि यह लोग मिलकर मेरे खिलाफ लड़ें । मेरा खून न करें ?" [6]

उपर्युक्त कथन तत्कालीन शोषक मानसिकता को प्रस्तुत करता है । जिसके तहत यह वर्ग सदैव अपने हितों के प्रति सचेष्ट रहता है और इस बात की पूरी तत्परता से कोशिश करता है कि किसी भी दशा में उसके हितों पर कोई आंच न आने पाए । इसलिए जब शिष्टमंडल रिचर्ड से मिलकर आग्रह करता है कि यदि सिर्फ एक हवाई जहाज शहर के ऊपर उड़ा दिया जाए तो दंगा टल सकता है, तब वह इन बातों को अनसुनी कर अपने निजी हितों को प्रमुखता देता है ।

हवाई जहाज शहर के ऊपर उड़ाने भरता है और लोगों पर इसका तत्काल प्रभाव परिलक्षित होता है । किंतु यह कार्यवाही तब शुरू होती है जब इंसानी बस्तियाँ बीरान हो जाती हैं, गुरूद्वारा मसान बन चुका होता है और कुआँ गाँव की जवान लड़कियों एवं औरतों से पट चुका होता है । अब तक रिचर्ड के सिर से यह खतरा टल गया होता है कि हिन्दू-मुसलमान

5· तमस, भीष्म साहनी, पृ0 47

6· वही, पृ0 115

मिलकर एक साथ उसके सामने खड़े हो सकेंगे । रिचर्ड का मंतव्य स्पष्ट है कि- "यह मेरा देश नहीं है, न ही ये मेरे देश के लोग हैं ।" [7] यह न सिर्फ रिचर्ड, वरन् सम्पूर्ण अंग्रेजी सत्ताधीशों की मानसिकता को उजागर करता है ।

भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन में कांग्रेस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में कुछ ओजस्वी नेता थे, किंतु "तमस" के कांग्रेसी नेता भोंडे आदर्शवाद के मोह जाल से उबर नहीं सके हैं । उनमें प्रदर्शन अधिक था, अपने लक्ष्य के प्रति समर्पण कम । प्रभात फेरी के लिए कांग्रेसियों की जो मंडली निकलती है उसे अपने प्रचार की चिंता अधिक है, नालियाँ साफ करने की कम । कांग्रेस का पेशानपरस्त चरित्र इस रूप में चित्रित है मानों प्रभात-फेरी जैसे जन-जागरण वाले कार्यक्रमों को उन्होंने धार्मिक अनुष्ठान का रूप दे दिया हो । बख्शी जी जैसे कार्यकर्ता बिल्कुल अलग-थलग पड़ गए हैं । जबकि जरनैल जैसा स्पष्टवादी एवं निर्भीक कार्यकर्ता साम्प्रदायिक जुनून में मतवाले लोगों का शिकार बन जाता है । जरनैल, वास्तव में, देश भक्त है । उसे अपनी कोई चिंता नहीं है । राष्ट्रीय एकता के प्रति समर्पित एक सच्चा सिपाही है । जीवन के समस्त उपादानों से वंचित जरनैल अपने अडिग विश्वास और अदम्य साहस के कारण कभी पीछे नहीं हटता । यह उसकी राजनीतिक प्रतिबद्धता का ज्वलंत दृष्टांत है ।

कांग्रेस के नियमों का अक्षरशः पालन करने वाला जरनैल

7· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 233

अपने भाषणों में रावी तट पर की गई प्रतिज्ञा का बार-बार स्मरण कराता है और अखण्ड एवं स्वतंत्र भारत की संकल्पना प्रस्तुत करता है । जरनैल का गाँधी जी में अटूट विश्वास एवं श्रद्धा है । कांग्रेस की बागडोर उस समय गाँधी जी के हाथ में थी । कांग्रेस के कुछ नारे थे जिनमें, "भारत माता की जय", महात्मा गाँधी की जाय, बंदे मातरम्" प्रमुख थे ।

कांग्रेस में हिन्दू-मुस्लिम, सिख सभी वर्ग एवं धर्म, सम्प्रदाय के लोगों का प्रतिनिधित्व था । "तमस" में बक्षी जी, मेहता, जरनैल, शंकर कश्मीरीलाल, रामदास, अजीज और हकीम जी जैसे चरित्रों की परिकल्पना साम्प्रदायिक ऐक्य को दर्शाती है ।

राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करने के कारण कांग्रेस सम्पूर्ण भारतीय जनता के संघर्ष का नेतृत्व करने का दावा करती थी, किंतु मुस्लिम लीग का विचार इससे भिन्न था । मुस्लिम लीग के नेता कहते हैं थे ---कि-"कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है । इसके साथ मुसलमानों का कोई वास्ता नहीं है ।"[8] इस बयान से स्पष्ट होता है कि मुस्लिम लीग कांग्रेस के साथ सहयोग करने को तैयार नहीं थी, न ही वह राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होकर अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करना चाहती थी । अलगाववादी मानसिकता की परिणति अंतत: देश विभाजन की परिणति के रूप में हुई ।

8· तमस, पृ0 3।

कांग्रेस का विचार था कि --" कांग्रेस सबकी जमात है, हिन्दुओं की, सिक्खों की, मुसलमानों की । आप अच्छी तरह जानते हैं महमूद साहब, आप भी पहले हमारे साथ ही थे ।"[9] यह विचार कांग्रेस मंडली के एक उम्रदराज व्यक्ति के हैं । एक अन्य बुर्जुग का कहना है कि -" वह देख लो, सिक्ख भी हैं, हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी हैं । वह अजीज सामने खड़ा है, हकीम जी खड़े हैं । "[10]

"तमस" में कांग्रेसी नेताओं को अखण्ड भारत की स्वतंत्रकामी संकल्पना के साथ देखा जा सकता है । जरनैल उत्तेजित होकर कहता है -- "पाकिस्तान मेरी लाश पर ।"[11] उसकी उत्तेजित अभिव्यक्ति को साम्प्रदायिक तत्व सहन नहीं कर पाते हैं ।

इस उपन्यास में कांग्रेसी शंकर का चरित्र कुछ क्रांतिकारी रूप में उभरता है जब बख्शी जी के साथ कार्यकर्ता तामीरी काम के लिए मुसलमानों की बस्ती में जाते हैं तब शंकर कहता है --" यह तामीरी काम बकवास है । नालियां साफ करने से स्वराज नहीं मिलेगा ।"[12] " जबसे तामीरी काम करने लगे हो, आन्दोलन ठप हो गया है । लगाओ झाड़ू और कातो चरखा ।"[13] इन शब्दों में शंकर की अभिव्यक्ति हमें क्रांतिकारी शहीदों की ओर इंगित करती है, जिनकी शहादत के बिना भारत की स्वतंत्रता बहुत

9· तमस -- पृ0 31
10· वही - पृ0 31
11· वही - पृ0 32
12· तमस- पृ0 53
13· वही- पृ0 53

कठिन थी । इस क्रांतिदर्शी वैचारिकता पर जरनैल कांग्रेसी नजरिये से टिप्पणी करता है ---" तुमगद्दार हो । मैं तुम्हें जानता हूँ । तुम कम्यु-निष्ट हो ।" [14]

जाहिर है स्वराज्य चरखा कातने या नालियां साफ करने से नहीं प्राप्त हुआ । इसके लिए असंख्य प्राणों की बलि देनी पड़ी । जनमानस ने अंगड़ाई ली और वातावरण अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध हो गया । यह आभास पाकर ब्रिटिश सत्ता की नींद उड़ने लगी थी ।

"तमस" में कांग्रेस धर्मनिरपेक्ष दल के रूप में संघर्षशील है । सभी कांग्रेसी चरित्र साम्प्रदायिक सौहार्द्र की बात करते हैं । उनकी कोशिश है कि दंगा न होने पाये । किंतु डिप्टी कमिश्नर शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं करता है और व्यंगपूर्ण मुस्कान लिए हुए कहता है ---" वास्तव में आपका मेरे पास आना ही गलत था । आपको तो पंडित नेहरू या डिफेंस मिनिस्टर सरकार बलदेव सिंह के पास जाना चाहिए था । सरकार की बागडोर तो उनके हाथ में है । "[15]

रिचर्ड नेहरू सरकार का बहाना बनाकर अपने कर्तव्य से मुक्त हो जाता है । यह उसकी साम्प्रदायिक राजनीति का स्पष्ट प्रमाण है । ब्रिटिश सरकार की फूटपरस्त कोशिशें सफल होने के उपरांत रिचर्ड आसमान में

---

14. तमस -- पृ0 53

15. वही - पृ0 78

हवाई जहाज उड़वाता है और अमन कमेटी का संचालन करता है । यह सरकार की दुरंगी नीति का परिचायक है ।

"तमस" में मुस्लिम लीग को साम्प्रदायिक राजनीति करने वाली शक्ति के रूप में दिखाया गया है । मुस्लिम लीग का आधार ही साम्प्रदायिक था । उसके नेता मुस्लिम हितों की रक्षा के नाम पर साम्प्रदायिक राजनीति करना चाहते थे । कांग्रेसी नेता समूचे भारतीयों के प्रतिनिधित्व का दावा करते थे, किंतु मुस्लिम लीग का कार्यकर्ता कहता है --" कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है और मुस्लिम लीग मुसलमानों की । कांग्रेस मुसलमानों की रहनुमाई नहीं कर सकती ।"[16] मुस्लिम लीग पाकिस्तान की माँग पर अडिग थी । उसका कहना था कि " हिन्दुस्तान की आजादी हिन्दुओं के लिए होगी, आजाद पाकिस्तान में ही मुसलमान आजाद होंगे ।" [17]

"पाकिस्तान जिंदाबाद", "कायदे आजम जिंदाबाद", जैसे नारे लीगियों को बहुत प्रिय थे आजाद जैसे वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं को वे सरेआम अपशब्द कहते । एक वयोवृद्ध के यह पूछने पर कि --" मौलाना आजाद क्या हिन्दू हैं या मुसलमान? वह तो कांग्रेस का प्रेसीडेंट है । "[18] उनका उत्तर होता --" मौलाना आजाद हिन्दुओं का सबसे बड़ा कुत्ता है। गाँधी के पीछे दुम हिलाता फिरता है।" [19]

16· तमस - पृ0 31
17· वही - पृ0 32
18· वही - पृ0 32
19· तमस - पृ0 32

इनकी रगों में साम्प्रदायिकता का जहर इस हद तक घुल चुका है कि वे पाकिस्तान की संकल्पना के विरूद्ध कुछ भी सुनना सहन नहीं कर सकते। इसी तरह एक बूढ़ द्वारा अजीज और हकीम की तरफ संकेत करने पर लीगी उत्तेजित होकर कहते हैं कि --अजीज और हकीम हिन्दुओं के कुत्ते हैं। हमें हिन्दुओं से नफरत नहीं, इनके कुत्तों से नफरत है।" [20] इस कटु आघात से वे दोनों मुसलमान सचमुच तिलमिला जाते हैं।

इस उपन्यास में हिन्दू महासभा का साम्प्रदायिक चरित्र उभरता है। मुस्लिम लीग की तरह यह भी हिन्दू कट्टरवादियों का संगठन है। इसके एक नेता वानप्रस्थी जी मंत्रपाठ के पश्चात् अपना भाषण देते हैं। "प्रवचन देते समय वानप्रस्थी जी स्वयं अत्यधिक विचलित और भावोद्वेलित हो उठे थे, उनका चेहरा तमतमाने लगा था। और होंठ फड़फड़ाने लगे थे, विशेष रूप से जब उन्होंने आवाज ऊँची उठाकर मर्मभेदी आवाज में ये पंक्तियाँ पढ़ी थीं --

फैलाए घोर पाप यहाँ मुसलमीन ने
नेमत फलक ने छीन ली दौलत जमीन ने।" [21]

वानप्रस्थी जी साम्प्रदायिक राजनीति पर विशेष जोर देते हैं। ऐसे लोग पुनरूत्थानवादी होते हैं और रामराज्य की संकल्पना दुहराते हुए लोगों की भावनाओं का शोषण करते हैं। इस कट्टरपंथी संगठन की राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में कोई आस्था नहीं दिखती, न ही वे ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध संघर्ष करते हैं किंतु साम्प्रदायिक संघर्ष में आगे रहते हैं।

20· तमस, भीष्म साहनी, पृ0 32
21· वही, पृ0 60

"तमस" में वामपंथी चरित्रों का भी चित्रण हुआ है । सन् 1926 में भारत में कम्युनिष्ट पार्टी स्थापित हुई । इस औपन्यासिक कृति में देवदत्त एक प्रतिबद्ध कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के रूप में भीषण दंगों के दौरान लोगों से साम्प्रदायिक सौहार्द्र बनाए रखने का अनुरोध करता है और हिंसक वातावरण से खिन्न होकर अपनी चिंता प्रकट करता है । " शहर में दंगों को रोकने के लिए एक बार फिर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लीडरों को इकट्ठा करना होगा । हयातबक्श और बख्शी जी को आपस में मिलाना होगा ।"[22] वह लोगों से मिलता है । राजाराम उसे देखकर दरवाजा बंद कर लेता है, रामनाथ कम्युनिस्टों को गालियाँ देने लगता है । हयातबक्श आँखें लाल किए मिलता भी है तो - : "ले के रहेंगे पाकिस्तान, बन के रहेगा पाकिस्तान," का नारा लगाते हुए । देवदत्त अपना प्राण हथेली पर लेकर दंगाग्रस्त क्षेत्रों में जाने के लिए तैयार होता है । जब सारे लोग आतंक के वातावरण में अपने घरों में सिमटे हुए हैं, देवदत्त को बाहर जाते देख उसके वृद्ध पिता का वात्सल्य जाग्रत हो उठता है —" मरना चाहते हो तो पहले अपने घर वालों को मारकर जाओ। देखते नहीं शहर की क्या हालत हो रही है ?" [23]

देश और जन के प्रति प्रतिबद्धता जहाँ देवदत्त को विषम परिस्थिति में भी घर से बाहर जाने के लिए प्रोत्साहित करती है वहीं एक मुसलमान कम्युनिस्ट भावना में बहकर उसका साथ छोड़ देता है । वह क्रोध में अंधा होकर

22· तमस, भीष्म साहनी, पृ0 138

23· वही, पृ0 138

कहता है —" अंग्रेज की शरारत, अंग्रेज की शरारत, इसमें अंग्रेज कहाँ से आ गया । मस्जिद के सामने सूअर फेंकते हैं, मेरी आँखों के सामने तीन गरीब मुसलमानों को काटा है, हटाओ जी, सब बकवास है । " [24]

साम्प्रदायिक उन्माद में कामरेड को सत्य-असत्य का बोध नहीं रहता है । इसका कारण मध्यवर्गीय चेतना और पुरातन संस्कारों का गहरा प्रभाव भी माना जा सकता है । इसके पीछे एक और तथ्य छिपा हुआ है कि ऐसे लोगों का सैद्धांतिक आधार अपरिपक्व होता है । सैद्धांतिक आधार से अनभिज्ञ होने के कारण यथावसर भावना के प्रवाह में बह निकलते हैं । अपने साथी को कम्यून छोड़कर जाते हुए देवदत्त कहता है कि --" साथी का सैद्धांतिक आधार कच्चा है । जज्बात की रौ में बहकर कोई कम्युनिस्ट नहीं बनता, इसके लिए समाज-विकास को समझना जरूरी है । " [25]

कम्युनिस्ट कार्यकर्ता चाहते हैं कि सभी पार्टियाँ आपस में मिलकर कोई समाधान ढूँढ़ निकालें । इसके लिए वे कांग्रेस और मुस्लिम लीग से सम्पर्क करते हैं । देवदत्त कहता है —" कामरेड उनके मिल बैठने से ही लोगों पर अच्छा असर होगा । फिर हम उनके नाम से शहर में अमन कायम करने की अपील कर सकते हैं ।" [26]

24· तमस - पृ0 142

25· वही, पृ0 143

26· वही, पृ0 143

कम्युनिस्ट धर्मनिरपेक्ष शक्ति के रूप में काम कर रही, जबकि मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने का प्रयत्न करते हैं । अंग्रेजों की कुटिल नीति के परिणामस्वरूप इन साम्प्रदायिक दलों ने धर्म के बहाने साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का प्रयास किया ।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में जो लड़ाई हमें मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़नी थी, उससे आंदोलन भटक गया । कट्टरवादियों के अनावश्यक एवं अनपेक्षित प्रवेश से आंदोलन की शक्ति का ह्रास हुआ । ब्रिटिश साम्राज्य-वाद ने भेद-भाव की नीति के माध्यम से हिन्दू - मुसलमानों के सम्बन्धों में दरार पैदा कर दी, क्योंकि उसे डर था कि देश के नाम पर सभी एक होकर उसके विरुद्ध संघर्ष कर सकते हैं ।

"तमस" में एक ओर धर्म निरपेक्ष राजनीति करने वाले हैं तो दूसरी ओर धर्माधारित साम्प्रदायिक राजनीतिक चरित्रों को उजागर किया गया है । स्वातंत्र्य- प्राप्ति के मुख्य राजनीतिक लक्ष्य से भटकने की ओर भी इंगित किया गया है ।

2. साम्प्रदायिकता और धार्मिक-चेतना :

धर्म में सच्ची आस्था रखने वाले साम्प्रदायिक नहीं होते और साम्प्रदायिक तत्व कभी धार्मिक नहीं हो सकते । धर्म प्रेम, करुणा, सहानुभूति और परोपकार जैसे उदात्त मानवीय मूल्यों की शिक्षा देता है, जबकि साम्प्रदायिकता

उन्माद पैदा करती है जिसकी परिणति अराजकता में होती है । भीष्म साहनी ने "तमस" में धर्म के नाम पर की जा रही साम्प्रदायिक राजनीति का सूक्ष्म अंकन किया है ।

उपन्यास का प्रारम्भ नत्थू द्वारा सूअर मारने की घटना से होता है । ब्रिटिश शासन का चमचा और म्युनिस्पलिटी का कारिन्दा मुराद अली नत्थू को सूअर मारने के लिए पाँच रूपये का नोट देता है । उपन्यास में ऐसा आभास होता है कि मस्जिद की सीढ़ियों पर वही सूअर फिकवा दिया गया है । इससे मुसलमानों में उत्तेजना व्याप्त हो जाती है । "तभी कुएँ की ओर से किसी के भागते कदमों की आवाज आई । तीनों ने घूमकर देखा, एक गाय भागती आ रही थी । उसके पीछे एक आदमी सिर पर मुँडासा बाँधे और हाथ में डंडा लिए गाय के पीछे -पीछे भागता हुआ, उसे हाँके लिए जा रहा है । उसकी छाती खुली हुई थी और गले में ताबीज लटक रहा था । चिकनी खाल वाली, बादामी रंग की गाय थी, मोटी - मोटी चकित सी आँखें । डर के ही मारे उसकी पूँछ उठी हुई थी । लगता जैसे रास्ता भटक गई है।"[27]

वस्तुत: गाय हिन्दुओं के मानवीय मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों की प्रतीक है जिसका एक पाखण्डी एवं उन्मत व्यक्ति हनन करने जा रहा है । गाय पोषण की प्रतीक है इसलिए मातृवत् है । किंतु मस्जिद की सीढ़ियों पर

---

27. तमस, भीष्म साहनी, पृ0 59

पड़ा " सुअर मरा नहीं था, वह मस्जिद की सीढ़ियों पर जाकर फिर से जिन्दा हो गया था, मगर अपने पूरे पशुत्व और प्रतिशोध के साथ ।" [28]

जाहिर है, बदसूरत तौंदियल सूअर साम्प्रदायिक उन्माद में आहुति बनकर पूरे वातावरण को प्रतिशोध की अग्नि में धकेल देता है । हिन्दू, मुसलमान और सिख इन तीनों सम्प्रदायों के कट्टर मनोवृत्ति वाले इन दंगों का कारण बनते हैं । देवव्रत हिन्दू युवकों को संगठित करते हैं और रणवीर की मानसिक दृढ़ता की परीक्षा लेकर दल में दीक्षित कर लेते हैं । मुस्लिम दंगाइयों का दल जामा मस्जिद तथा शेख गुलाम रसूल के घर में शस्त्रों का संग्रह कर रहा है । सिखसमुदाय गुरूद्वारे में मोर्चा बनाता है । इन दंगाइयों का न कोई सिद्धांत है, न ही मूल्य । आतंक का वातावरण उत्पन्न करके मानवीय मूल्यों को धराशायी करना इनका प्रमुख लक्ष्य है । रणवीर और धर्मदेव हिन्दुओं के रक्षार्थ कड़ाही देने से इन्कार करने पर अपने ही धर्म के हलवाई पर आक्रमण कर देते हैं । एक मुसलमान होते हुए मुराद अली सूअर मरवाकर मस्जिद की सीढ़ियों पर फिकवा देता है ।

"तमस" के लाला लक्ष्मीनारायण अपनी युवा पुत्री की सुरक्षा के प्रति अधिक चिंतित हैं, किंतु नानकू को जलती आग में छोड़ देते हैं । यहाँ एक वर्ग-चरित्र उभरकर सामने आता है, जो निजी स्वार्थ के आगे किसी की परवाह नहीं करता है । शाहनवाज की ट्रक मोटर पूरे शहर का चक्कर लगाती है,

---

28· अठारह उपन्यास, राजेन्द्र यादव, पृ0 62

लेकिन उसे कुछ नहीं होता । सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से संपन्नता उसकी निश्चिंतता का कारण है । अपने मित्र रघुनाथ के घर से कीमती जेवरात निकालने जाता है, परन्तु मिल्खी को देखकर प्रतिशोध जाग जाग उठता है । " मिल्खी की चुटिया पर नजर जाने के कारण, मस्जिद के आंगन में लोगों की भीड़ को देखकर, या इस कारण कि जो कुछ वह पहले तीन दिन से देखता सुनता आया था वह विष की तरह उसके अन्दर घुलता रहा था । शाहनवाज ने बढ़कर मिल्खी की पीठ में जोर से लात जमायी।" [29]

मिल्खी गरीब नौकर है । यह सच है कि "तमस" में जो लोग साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार हुए हैं, सभी गरीब और निर्दोष हैं । शाहनवाज का असमय-अतार्किक क्रोध मिल्खी की समझ में नहीं आता । "मिल्खी की आंखें खुली थीं और शाहनवाज के चेहरे पर ऐसे लगी थीं मानो बात उसकी समझ में भी न आ रही हो कि उसकी किस भूल से खफा होकर खान जी ने उसे मारा था । " [30]

रघुनाथ शहर में हो रही हिंसक घटनाओं की ओर शाहनवाज का ध्यान केन्द्रित करना चाहता है, किंतु इतने से ही दोनों के बीच एक दूरी बन जाती है ।" उनके आपसी रिश्ते की बात और थी, हिन्दू-मुसलमान की रिश्ते की बात दूसरी थी, इस वाक्य से रघुनाथ ने मानो निजी रिश्ते के साथ जातियों के रिश्ते को जोड़ने की कोशिश की थी जिसके बारे में दोनों के अलग-अलग विचार थे । "[31]

---

29. तमस - भीष्म साहनी, पृ0 137
30. वही, पृ0 137
31. वही, पृ0 131

धर्म जैसे संवेदनशील मामले में समझौता सम्भव नहीं होता और इनमें टकराव की स्थिति आ जाने के कारण सुदीर्घ मैत्री-सम्बन्ध भी अकस्मात टूट जाया करते हैं । रघुनाथ और शाहनवाज के बीच क्षणिक टकराव से एक दूरी बन जाती है ।

उपन्यासकार ने कट्टरपंथी संगठनों की कुत्सित एवं घिनौनी मानसिकता का पर्दाफाश किया है । जो लोगों की धार्मिक भावनाओं का शोषण करके समाज और राष्ट्र के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं । वानप्रस्थी जी जैसे पुण्यात्मा और देवव्रत जी जैसे संगठक जनता और किशोरों को गुमराह करके हिंसक गतिविधियों में लगाते हैं । हिन्दू धर्म के अस्तित्व का खतरा दिखाकर लोगों की भावनाओं को भड़काते हैं । मुसलमानों के विरुद्ध अपना उद्‌गार व्यक्त करते हुए मास्टर देवव्रत रणवीर को बताते हैं कि --" म्लेच्छ तोगंदे होते हैं, म्लेच्छ नहाते नहीं, पाखाना करके हाथ नहीं धोते, एक दूसरे का जूठा खा लेते हैं, समय पर शौच नहीं जाते हैं । "[32]

हिन्दू धर्म के इन तथाकथित संरक्षकों ने मुसलमानों को मनुष्य से म्लेच्छ तक कह दिया है । वानप्रस्थी जी की अध्यक्षता में मंदिर के भीतरी प्रकोष्ठ में अंतरंग सभा की बैठक होती है जिसमें नगर की बिगड़ती स्थिति का ब्यौरा, कुछ उड़ती अफवाहों की चर्चा और मस्जिद के समक्ष पायी गयी सूअर का जिक्र किया गया । जामा-मस्जिद में एकत्र हो रहे अस्त्र-शस्त्रों के बारे में

32· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 131

बताया गया । वानप्रस्थी जी ने अपनी धीर-गंभीर वाणी में उद्‌बोधित किया- "सबसे पहले अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए । सभी सदस्य अपने अपने घर में एक एक कनस्तर कड़वे तेल का रखें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें । उबलता तेल शत्रु पर डाला जा सकता है, जलते अंगारे छप पर से फेंके जा सकते हैं ।"[33]

धर्मान्धता के विविध रूप इस उपन्यास में देखे जा सकते हैं । कट्टर हिन्दुत्व की बखिया उधेड़ती यह रचना धर्म की आड़ में शिकार खेलने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियों के दुस्साहसिक कदमों का खुलासा प्रस्तुत करती है । फिर कापरस्ती और कट्टरपंथी मनःस्थितियों को सामाजिक संदर्भों में देखने का प्रयास किया गया है ।

"बोधराज लेटकर बाण चला सकता था, शहनेथी बाण चला सकता था, लटकती रस्सी को निशाना बना सकता था । बाणों के सिर पर लगाने के लिए वह धातु की तिकोन नोकें बनवा लाया था और अपने साथियों से उनकी संभावनाएं बयान करता था ।"[34]

साम्प्रदायिकता का यह तर्कहीन जहर गहन अंधकार है, उन्माद है जो अत्यन्त भयानक एवं अर्थहीन है । " ऐसे प्रसंगों में उपन्यासकार ऐसे अर्थसंकेत भी देता चलता है कि कट्टरपंथी हिन्दुत्व की घृणा का शिकार अक्सर गरीब

33· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 62

34· वही, पृ0 71

मुसलमान होता है । जब किसी रईस मुसलमान से उसका सामना होता है तो मजहबी जुनून उच्चवर्गीय शालीनता, शिष्टता और इन्सानियत की दुहाई देता हुआ दोस्ताना लिहाज का बाना पहन लेता है । "[35]

रघुनाथ की पत्नी के जेवरों के प्रति चिंतित शाहनवाज का हिन्दू विरोधी संस्कार मिल्खी को देखकर हिंसक हो जाता है और वह उसकी हत्या करना चाहता है । यही हत्यारा रईस अमन-कमेटी की बस का पेट्रोल खर्च वहन के लिए आतुर दिखाई देता है जो उसकी सहानुभूति नहीं मिथ्या प्रदर्शन का परिचायक है । ऐसे दृश्यों के वर्णन में लेखक ने अपनी गहरी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ, कलात्मक कौशल एवं वैचारिक जागरूकता का परिचय दिया है । ये दृश्य आरोपित नहीं, वरन् सहज बोधगम्य होते हैं ।

धर्मान्ध और कट्टर हिन्दूवाद के पीढ़ी दर पीढ़ी फैलने का संकेत रणवीर के दीक्षा प्रसंग के माध्यम से समझा जा सकता है । किशोर रणवीर देवव्रत से दीक्षा लेकर अगली पीढ़ी के रूप में नृशंस हत्यारा बन जाता है । देवव्रत का उपदेश है --" अपने शत्रु की ओर ध्यान से कभी नहीं देखो, इससे निश्चय डगमगाने लगता है । किसी भी जीव की ओर ध्यान से देखो तो उसके प्रति दिल में सहानुभूति पैदा होने लगती है । ऐसा कभी नहीं होने देना चाहिए ।"[36]

---

35. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, सं. राजेश्वर सक्सेना, पृ0 128

36. तमस - भीष्म साहनी, पृ0 150

"तमस" में किशोर मानसिकता को धर्म और संस्कृति के नाम पर चिंतन की कारुणिक निर्धनता के कारण गुमराह होते देखा जा सकता है। गुमराह युवक रणवीर अपने साथियों को आक्रमण का सिद्धांत समझाता है । धर्म और संस्कृति की रक्षा का भार ओढ़े वानप्रस्थी जी शिष्टमंडल के साथ डिप्टी कमिश्नर के यहाँ जाने में अपनी मर्यादा का हनन समझते हैं -- "क्योंकि धार्मिक उपदेश देने वाले और सफेद बाना पहनने वाले वानप्रस्थी जी का यह काम नहीं है कि दुनियावी बखेड़ों में गृहस्थियों के साथ घिसटते फिरें ।"[37]

लेखक ने ऐसे धर्म भीरुओं पर व्यंग्य किया है जो अज्ञानियों पर अपने आडम्बर का मोहजाल फैंककर सम्मोहित करते हैं ।

धार्मिक कट्टरता में साम्प्रदायिक मुस्लिम भी पीछे नहीं है । उत्साह के नाम पर काफिरों का खून करना सवाब समझते हैं । "तमस" में मुस्लिमों की हिंसक तैयारियों का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है --"हरे छज्जे वाले शेखों के मकान में कस्बे के मुसलमान असला इकट्ठा कर रहे थे ।... यहाँ पर गाँव के सभी मुसलमान किसान, तेली, नानबाई अब मुजाहिद, बन गए थे, काफिरों के खिलाफ जिहाद की तैयारियां चल रही थीं ।आँखों में यहाँ भी खून उतर आया था और कुर्बानी का जश्न दिनों में लहरें मार रहा था । " [38]

37· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 65
38· वही, पृ0 176

ऐसी स्थिति में मीरदाद मुसलमानों को समझाते हुए कहता है कि अंग्रेज हमें आपस में लड़ा रहा है, लेकिन मजहबी जुनून के दीवाने इसकी बात पर ध्यान नहीं देते । मोटा कसाई कहता है --" हमारा अंग्रेज ने क्या बिगाड़ा है ओये? हिन्दू-मुसलमान की अदावत पुराने जमाने से चली आ रही है । काफिर काफिर है और जब तक दीन पर ईमान नहीं लाएगा वह दुश्मन है । काफिर को मारना सबाब है । "[39] वह अंग्रेजों को न्याय प्रिय बताता है ।

"अल्ला हो अकबर", "नारा· ए· तकबीर", के नारे लगाते दंगाइयों ने दुकानें जलाई, घरों को लूटा, लड़कियों के साथ बलात्कार किया और निर्दयता से कत्ल किया । धर्म के नाम पर पाशविकता का नग्न नृत्य चलता रहा । इकबाल सिंह को मुसलमानों का एक दल पकड़कर अपमानित करता है, किंतु धर्म स्वीकार करने के लिए उसके तैयार हो जाने पर उसे सभी गले लगाते हैं । " इकबाल सिंह को आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी माहौल बदल जाएगा कि उसके खून के प्यासे लोग उसे छाती से लगाने लगेंगे ।"[40]

लेखक ने साम्प्रदायिक उन्माद को बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है । इकबाल सिंह पेखु इकबाल अहमद बना दिया गया । "शाम ढलते ढलते इकबाल सिंह के शरीर पर से सिखी की सब अलामतें दूर कर दी गयी थीं और मुसलमानी की सभी अलामतें उतर आयी थीं । पुरानी अलामतें हटाकर

39· तमस - भीष्म साहनी, पृ0 150
40· वही, पृ0 82

नई अलामतें लाने की देर थी इन्सान बदल गया था, अब वह दुश्मन नहीं दोस्त था, काफिर नहीं था, मुसलमान था । मुसलमानों के सभी दरवाजे उसके लिए खुल गए थे । "[41]

मोर्चे का एक पहलू और है, जहाँ गुरुद्वारे में सिख अपनी रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्र का संचयन कर रहे हैं । " असला पिछले लम्बे बरामदे में तथा ग्रंथी की कोठरी में इकट्ठा किया जा रहा था । गाँव में सात गुरू सिखों के पास दोनाली बन्दूकें थीं और पाँच बक्से कारतूसों के थे । जत्थेदार किशन सिंह पिछली जंग में वर्मा की लड़ाई में भाग ले चुका था और वर्मा की लड़ाई के दाँव-पेंच वह अपने कस्बे के मुसलमानों पर चलाना चाहता था।"[42]

"तमस" में धार्मिक चेतना का क्षरण और उसका साम्प्रदायिक कट्टरवाद में रूपांतरण भीष्म साहनी की अन्तर्दृष्टि एवं औपन्यासिक कला का निदर्शन है । हिन्दू सिक्ख और मुसलमान धर्म के नाम पर इतने उन्मत्त हो जाते हैं कि अपने पुराने सम्बन्धों को भी विस्मृत कर देते हैं । यह सच है कि अपनी जाति, धर्म, संस्कृति की रक्षा का दावा करने वाले ये तीनों साम्प्रदायिक गुट विध्वंस के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सके ।

इसी कड़ी में बंतो और हरनाम सिंह की असहाय अवस्था का मर्मांतिक प्रसंग संवेदनशील पाठक को भीतर तक झकझोर देता है । इस दम्पति

---

41. तमस - भीष्म साहनी, पृ0 210

42. वही, पृ0 174

की धर्म में सच्ची आस्था है । हरनाम सिंह कहता है कि " हमने किसी का कुछ देना नहीं है, हमने किसी का कभी बुरा नहीं सोचा है, कभी बुरा नहीं किया है ।" [43] उसे अन्दर ही अन्दर विश्वास था कि उसके साथ लोग बुरी तरह पेश नहीं आयेंगे । वह ईश्वर से प्रार्थना करता है ।" सारा वक्त वह गुरू महाराज का नाम लेता रहा और उसे देखकर बंतो को भी त्राण मिलता था ।"[44] भयानक परिस्थिति के बावजूद उसके मन में क्षोभ, क्रोध या भय की भावना नहीं उत्पन्न होती । वह वैराग्य भाव से अविचलित सा रहता है । अपनी पत्नी बंतो को सम्बोधित करते हुए हरनाम सिंह कहता है कि — "मरने-मारने पर नौबत आयी तो मैं पहले तुम्हें मार दूँगा, फिर अपने को मार डालूंगा ।"[45] घर छोड़ते हुए बंतो अपने पालतू मैना को पिंजरे से मुक्त करती हुई कहती है, " जब मैना, तेरा रब्ब राखा, सरबद्द दा रब्ब राखा ।" [46] यह कहते हुए बंतो का कंठ रूँध गया । उधर मैना भी ज्यों की त्यों बैठी रही ।

मातृभूमि को छोड़ने की पीड़ा को इस प्रसंग के माध्यम से समझा जा सकता है । मानव का मानवेतर जीवों से गहरी प्रेम-सम्पृक्ति भी दर्शनीय है । बंतो-हरनाम सिंह रास्ते भर ईश्वर को याद करते हैं । हरनाम सिंह

43· तमस - भीष्म साहनी, पृ0 164

44· वही, पृ0 164

45· वही, पृ0 166

46· वही, पृ0 168

हाथ जोड़कर गुरू महाराज का नाम लेता हुआ कहता; "जिसके सिर उपरि तूं सुआमी सो दुख कैसा पावै ।"[47] सारी रात्रि चलते-चलते वे थक गए किन्तु उषा की शीतल वायु का स्पर्श उन्हें सुखद लगा । हरनाम सिंह ने कहा, " मुंह धो लो बंतो, फिर जपजी महाराज का पाठ करके चलेंगे ।"[48]

बिडम्बना है कि काल की क्रूर गति मनुष्य को किसी भी दिशा में मोड़ सकती है । हरनाम सिंह बंतो एक कट्टर लीगी के घर आश्रय पा जाते हैं । घर की मालकिन उनके लिए लस्सी ले आती है । " कटोरा हाथ में लेते ही हरनाम सिंह फफक-फफककर रो पड़ा । रात भर की थकान, उत्तेजना और दबी भावनाएं एकाएक फूटकर निकल आयीं" और वह बच्चो की तरह बिलख उठा । "[49]

विभाजन की त्रासदी ने बूढे, जवान, बच्चे सभी को एक तरह की चोट दी । संकट के इन क्षणों में दम्पति इकबाल सिंह और जसबीर की याद कर तड़प उठते हैं, जिनके बारे में उन्हें किंचित जानकारी नहीं है । लेखक का प्रत्येक प्रसंग अत्यंत हृदयदावक है । जीवंत वर्णन से स्थितियां सजीव हो जाती हैं और पात्रों की मनोदशाओं का सूक्ष्म विश्लेषण भी स्पष्ट हो जाता है ।

47· तमस - भीष्म साहनी, पृ0 164

48· वही, पृ0 172

49· वही, पृ0 192

"तमस" में धर्म की आड़ में क्रूरता एवं अमानवीयता का यथार्थ चित्रण किया गया है । यह सच है कि साम्प्रदायिक उन्माद की परिणीत फासीवादी मानसिकता में होती है । रूढ़ और परंपरागत आदर्शों और मृत-प्राय धार्मिक नैतिक विश्वासों से उत्पन्न विलगाव व्यक्ति को समाज, राष्ट्र परिवार और यहाँ तक कि स्वयं से भी पृथक कर देता है ।

3· साम्प्रदायिकता और संस्कृति :

"तमस" में भारतीय सांस्कृतिक स्वरूप का वर्णन किया गया है । संस्कृति किसी भी जाति की वह अमूल्य धरोहर है, जो उसके विचारों,आदर्शों एवं मूल्यों का प्रत्यक्ष कराती है । भारत की गौरवशाली सांस्कृतिक सम्पन्नता अनेकता में एकता का अनूठा निदर्शन है ।

राष्ट्रीय आंदोलन के दिनों में जिस जन-चेतना का आविर्भाव हुआ उससे हिन्दू, मुस्लिम, सिख सभी प्रभावित हुए थे । सभी मिलकर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे । ऐसे में सरकार को भारतीय जनता के संघर्ष को दबाने में कठिनाई होने लगी । उसने भारतीय ऐक्य को खण्डित करने की योजना बनाई और हिन्दू-मुस्लिम के बीच फूट के बीज बोने शुरू कर दिए । उसका पहला प्रहार भारत की सांस्कृतिक एकता पर हुआ ।

"तमस" में सांस्कृतिक संकल्पना के बहाने प्रतिगामी शक्तियों की कुटिलता का पर्दाफाश हुआ है । प्रेमचंद ने बहुत ठीक लिखा है कि -----

"साम्प्रदायिकता हमेशा संस्कृति की दुहाई दिया करती है, उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भाँति,जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल के जानवरों पर रोब जमाता फिरता था, संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है ।"[50]

यह सच है कि प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ सांस्कृतिक खतरे का बहाना बनाकर लोगों की धार्मिक भावनाओं को उभारती हैं उन्हें साम्प्रदायिकता की ओर उन्मुख करती हैं । भारतीयों की इस कमजोरी को पहचानने वाली ब्रिटिश सत्ता का प्रतिनिधि रिचर्ड लीजा से कहता है, " सभी हिन्दुस्तानी चिड़चिड़े मिजाज के होते हैं,छोटे से छोटे उकसाव पर भड़क उठने वाले, धर्म के नाम पर खून करने वाले, सभी व्यक्तिवादी होते हैं सभी सफेद चमड़ी वाली औरतों को पसन्द करते हैं ।"[51]

धर्म और संस्कृति के नाम पर परस्पर लड़ने वाले हिन्दू-मुस्लिमों की कट्टर मानसिकता का संकेत मिलता है । मानवीय विवेक और सद्भाव के ह्रासमान क्षणों में भी सांस्कृतिक शून्यता नहीं आने पाती । इस उपन्यास में कुछ ऐसी घटनाएं हैं जो अंधकार के बीच प्रकाश की रेखा बनती हैं । साम्प्रदायिक हिंसा के भीषण ज्वार को देखकर नत्थू अपने किए पर पश्चात्ताप करता है,

---

50. सापेक्ष, जनवरी-जून 1989, पृ0 11

51. तमस, भीष्म साहनी, पृ0 44

" मैंने जानबूझ कर कुछ नहीं किया है । मैंने जो कुछ किया है अनजाने में किया है । ये लोग जो आग लगा रहे हैं और राह जाते लोगों को मार रहे हैं, ये क्यों बुरा काम कर रहे हैं ? मेरे एक सूअर के मार देने से क्या होता है? एक सूअर को मार देने में रखा ही क्या है ? मैं मुजरिम हूँ तो क्या ये मुजरिम नहीं हैं ?" 52

नत्थू का यह अन्त: संघर्ष यथार्थपरक है । अनजाने में मारे गए सूअर का मूल्य हजारों-लाखों की आहुति देकर चुकाया जाएगा, यह सोचकर नत्थू परेशान हो जाता है ।

मानवता की अनश्वर प्रकृति रमजान जैसे क्रूर लीगी पर भी प्रभाव डालती है । हरनाम सिंह को मारने के लिए रमजान कुल्हाड़ी उठाता अवश्य है, पर प्रहार नहीं कर पाता । " दो तीन बार रमजान ने कुल्हाड़ी उठाने की कोशिश की, पर कुल्हाड़ी हाथ में रहते भी वह उसे उठा नहीं पाया । काफिर को मारना और बात है, अपने घर के अन्दर जान-पहचान के पनाह-गजीन को मारना दूसरी बात । उनका खून करना पहाड़ की चोटी पार करने से भी ज्यादा कठिन हो रहा था । मजहबी जुनून और नफरत के इस माहौल में एक पतली सी लकीर अभी खींची थी जिसे पार करना बहुत मुस्किल था । उसे रमजान भी नहीं पार कर पा रहा था । " 53

---

52. तमस- भीष्म साहनी, पृ0 156

53. वही, पृ0 202

मानवीय आस्था और सद्भाव की इस क्षीण रेखा को स्थायित्व प्रदान करके लेखक ने मनुष्य के भीतर छिपी मानवीय संवेदना को यत्र-तत्र उभारने का प्रयास किया है ।

अपनी पत्नी बंतो को आश्रय की भीख माँगते देखकर हरनाम सिंह ग्लानि से भर उठता है । राजो उन्हें अपने यहाँ शरण देती है, यह जानते हुए भी कि उसका बेटा कट्टर लीगी है और फिलहाल हिन्दुओं के प्रति उसके मन में किंचित दया भाव नहीं है । फिर भी, वह सारे संभावित खतरों को अपने ऊपर लेती हुई आश्रय देती है । दरवाजा खोलते हुए राजो की मनोदशा का वर्णन अत्यंत मर्मस्पर्शी है । " क्षण भर के लिए वह औरत ठिठकी खड़ी रही, वह निर्णायक क्षण जब मनुष्य अपने पुंजीभूत प्रभाव के आधार पर कोई निर्णय लेता है । औरत कुछ देर तक उनकी ओर देखती रही । फिर उसने दरवाजा खोल दिया ।"[54]

घर में राजो उस वृद्ध दम्पति का सत्कार करती है और अपने कट्टर लीगी बेटे की क्रूरता को बता देती है । हरनाम सिंह बंतो के साथ ज्यों ही जाने के तैयार होता है, राजो उन्हें रोक लेती है, " न जाओ जी रुक जाओ, साँकल चढ़ा दो । तुमने मेरे घर का दरवाजा खटखटाया है । दिल में कोई आस लेकर आए हो । जो होगा देखा जाएगा । तुम लौट आओ।"[55]

54· तमस- भीष्म साहनी, पृ० 191

55· वही, पृ० 193

राजो बंतो हरनाम सिंह को रमजान की नजरों से छिपाने के लिए गुप्त स्थान में बैठा देती है । अकरां को सख्त हिदायत देती है कि वह रमजान से इस बारे में कुछ न बताए । किंतु रमजान इस भेद को जान लेने के उपरांत उन्मत हो जाता है और कुल्हाड़ी से दरवाजे पर प्रहार करता है। ऐसे क्षणों में राजो दृढ़ता पूर्वक रमजान को फटकारती है, " क्यों भौंक रहा है तू ? क्या हुआ है ? किधर है यह चुड़ैल ? तेरी जीभ न खींच ली तो कहना, हरामजादी तुझे मना किया था इसे नहीं बताना, क्यों बताया है? तेरे पेट में बात नहीं पचती ? तू क्या चहता है रमजाना? यह आदमी हमारी जान पहचान का है, हम इसके देनदार रहे हैं ।" [56]

जहाँ सारा कार्य-व्यापार स्वार्थ और सामाजिक-आर्थिक मान-दण्डों पर टिका हो, जिसमें धर्म और संस्कृति का मिथ्याडंभ भरा हो, वहाँ निस्वार्थ राजो का चरित्र लेखक की संतुलित दृष्टि का परिचायक है । "तमस" लेखक के वास्तविक और व्यापक अनुभवों की रचनात्मक प्रस्तुति है । लेखक जिस परिवेश और स्थितियों का चित्रण करता है, उनसे उसका निजी और निकट का परिचय रहा है । इसलिए इस उपन्यास में एक आत्मीय और सहज विश्व-सनीयता मिलती है ।"[57]

"तमस" में साम्प्रदायिकता और संस्कृति के अंतर्संबंधों और उसके कारण कार्य सम्बन्धों को रेखांकित किया गया है । जातीय एकता में दरार पड़ने के कौन से कारण हो सकते हैं जबकि हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख सबकी भाषा

56· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 201
57· हिन्दी उपन्यास 1950 के बाद, सं· निर्मला जैन, पृ0 81

परिधान, खानपान, संगीत, कला एवं मानवीय अवधारणाओं में कोई सूक्ष्म अंतर नहीं दिखता ।" अगर मुसलमानों में एक सम्प्रदाय ऐसा है जो बड़े से बड़े पैगम्बरों के सामने सिर झुकाना कुफ्र समझता है, तो हिन्दुओं का भी सम्प्रदाय ऐसा है जो देवताओं को पत्थर के टुकड़े और नदियों को पानी की धारा और धर्मग्रंथों को गपोड़े समझता है । यहाँ तो हमें दोनों संस्कृतियों में कोई अंतर नहीं दिखता।"[58]

दरअसल, सूअर की हत्या का प्रयास सम्पूर्ण मानवीय सद्भाव और आस्था का प्रतीक बन जाता है । फलस्वरूप सांस्कृतिक विरासत चकनाचूर हो जाती है । "तमस" में सांस्कृतिक मर्यादा की रक्षा के नाम पर साम्प्रदायिक हिंसा मानवीय विवेक के ह्रास का प्रतीक है ।

4. साम्प्रदायिकता और इतिहास :

विभाजन की पृष्ठभूमि में भारतीय क्षितिज पर साम्प्रदायिक तनाव और फलस्वरूप दंगों का जो सिलसिला प्रारंभ हुआ, उसके पीछे इतिहास की भ्रमपूर्ण व्याख्याएँ भी प्रमुख कारण हैं । कुछ साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के इतिहासकारों ने तथ्यों को तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत किया ।

"तमस" में पुनरूत्थानवादी विचारों की स्पष्ट झलक मिलती है ।

---

58. हंस 1989

"आम तौर पर पुनरूत्थानवादी प्रयासों का उद्देश्य साम्प्रदायिक लक्ष्यों की सेवा करना होता है"[59] जो लोग अच्छे पड़ोसियों की तरह मिलजुलकर रहते थे, अकस्मात वे ही धार्मिक उन्माद में वह निकलते हैं ।

भारत का सांस्कृतिक स्वरूप बहुविध होने के बावजूद उसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक एकरूपता का धागा था जो हमारी जातीय एकता की पहचान कराता था । शायद इसीलिए लीजा अपने खानसामे को पहचान नहीं पाती कि वह हिन्दू है या मुसलमान ।

अशिक्षा एवं गरीबी के कारण हिन्दुस्तानी जनता अपने देश के इतिहास से अनभिज्ञ थी। रिचर्ड कहता है, " यहाँ के लोग कुछ नहीं जानते । ये वही जानते हैं जो हम इन्हें बताते हैं । ये लोग अपने इतिहास को जानते नहीं हैं, ये केवल उसे जीते हैं ।" [60]

यकीनन, हिन्दुस्तानियों के मस्तिष्क में आयोजित ऐतिहासिक सामग्री भरी होती थी । "तमस" में साम्प्रदायिक प्रचारकों के पाखण्ड का यथार्थ वर्णन हुआ है । रणवीर ने मास्टर देवव्रत के मुँह से सुन रखा है कि — " वेद में सब लिखा है, विमान बनाने का ढंग, बम बनाने का ढंग । उन्हीं के मुँह से योगशक्ति की महिमा भी सुनी थी । जिस मनुष्य में योगशक्ति है वह सब कुछ कर सकता है ।" [61]

---

59. इतिहास-बोध, अक्टूबर-दिसम्बर 1990, पृ0 31
60. तमस- भीष्म साहनी, पृ0 36
61. वही, पृ0 67

रणवीर साम्प्रदायिक दंगों के दौरान इन कौशलों का प्रयोग करना चाहता है । उसके मस्तिष्क में मेघबाण और अग्निबाण कौंध रहे थे । मुसलमानों के विरुद्ध बताए गए शिक्षा सूत्र उसके मन में कुलाँचे भर रहे थे । स्पष्ट है कि किशोरों को गुमराह करके हिंसक कार्यों में प्रवृत्त करने की योजना बनाई जाती थी । राणा प्रताप और शिवाजी को मुसलमानों के कट्टर शत्रु के रूप में बताया जाता था । " रणवीर जब छोटा था तो मंत्रमुग्ध मास्टर जी के मुँह से वीरों की कहानियाँ सुना करता था जब राणा प्रताप की आधी बची हुई रोटी बिल्ली खा गई और उन्हें पहली बार अपनी निस्सहाय स्थिति का बोध हुआ था । शहर के आसपास के पहाड़ी को देखता तो उन पर उसे कभीचेतक घोड़ा दौड़ता नजर आता, कभी किसी चट्टान पर घोड़े की पीठ पर बैठे शिवाजी बैठे आते, दूर तुर्कों के लश्करों की ओर देखते हुए जब शिवाजी म्लेच्छ सरकार से बगलगीर हुए थे ।"[62]

प्रतिक्रिया-वादियों के इस षड़यंत्र का शिकार रणवीर ही नहीं तमाम युवक होते हैं, जिनसे निर्दोष लोगों की हत्या करवाई जाती है ।रणवीर एवं उसके साथियों का दिल दुश्मन से बदला लेने के लिए आतुरहै, " छज्जे के पीछे खड़े वे वैसा ही महसूस कर रहे थे जैसा चट्टानों की आड़ में खड़े राजपूत नीचे हल्दीघाटी में आने वाले म्लेच्छों का इंतजार करते हुए महसूस कर रहे होंगे ।"[63]

62· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 66

63· वही, पृ0 146

यहाँ इतिहास के उन पृष्ठों की ओर संकेत है, जहाँ शिवाजी और राणा प्रताप को मुस्लिम विरोधी बताया जाता है । किंतु सच तो यह है कि इनकी लड़ाई मुसलमानों से नहीं, शासकों से थी जैसा हिन्दू राजाओं के बीच भी हुआ करती थी ।

रणवीर अपने को शिवाजी की भूमिका में देखा करता था । "छाती पर दोनों बाहें बाँधे, तिरछी आँखों से वह सड़क और आसपास के इलाके का जायजा लिया करता था । किसी-किसी वक्त उसके मन में ललक उठती कि कमर में तलवार लटकती हो, चौड़ा कमर बंद हो, अंगरक्षक हो और सिर पर पीले रंग की पगड़ी और उस पर शिरस्त्राण हो ।" [64]

रणवीर दल का सर्वाधिक कुशल और विश्वसनीय सदस्य था । उसे अन्य साथी सरदार कहा करते थे । अत: वह -- " फौज के कमांडरों की तरह हुक्म देता था और दल के सभी सदस्यों को कड़े अनुशासन में रखता था । पीछे-पीछे हाथ बाँधे, तनिक झुककर, गहरी चिंता में खोया वह शस्त्रागार में ऊपर नीचे टहलता, वैसे ही जैसे औरंगजेब के साथ लोहा लेने से पहले शिवाजी टहलते रहे होंगे ।"[65]

शिवाजी और राणा जैसे शूर वीरों को साम्प्रदायिक रंग देकर इतिहास को एक व्यंग्यपूर्ण मोड़ दिया गया । इससे न सिर्फ भेद-भाव बढ़ा,

---

64· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 147
65· वही, पृ0 147

वरन् प्रतिशोध की अग्नि में मर मिटने का भाव उत्पन्न हुआ । "तुर्कों के जेहन में भी यही था कि वे अपने पुराने दुश्मन सिक्खों पर हमला बोल रहे हैं । और सिक्खों केजेहन में भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे जिनके साथ खालसा लोहा लिया करता था । "[66]

"तमस" में वर्णित साम्प्रदायिक हिंसा की प्रवृत्ति इस बिन्दु पर पहुँच गई थी कि जब तक काफिर "दीन पर ईमान" नहीं लाता, दुश्मन समझा जाता था और उसे मारना "सबाब" था । भारतीय जनता के समक्ष वह दिन भी आया जब उसने इस त्रासदी को देखा । प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ सदैव अपने एकाधिकार के प्रति सतर्क रहती हैं, जिससे कहीं उनके स्वार्थ को आघात न लगे । अतएव् वह समाज के उस गरीब एवं अशिक्षित वर्ग को अपने तथाकथित आदर्शों में उलझाकर रखना चाहती है क्योंकि इन वर्गों की जागृत चेतनासेवह सदैव आतंकित रहती है । " आमतौर पर पुनरूत्थानवादी प्रयासों का उद्देश्य साम्प्रदायिक लक्ष्यों की सेवा करना होता है । उनका मकसद, ऐसे लोगों की माँग पूरी करना होता है, जिनकी भविष्य के बारे में दृष्टि अतीत पर टिकी होती है । ये लोग वर्तमान पीढ़ी को अतीत बेचना हैं और इसके लिए अतीत को आकर्षक, किंतु झूठे रंगों से रंग पुनकर पेश करते हैं ।"[67]

वस्तुत: भारत में साम्प्रदायिक अभिवृद्धि का एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि हमारे इतिहास में शिवाजी एवं राणा प्रताप जैसे वीर नायकों

66· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 211
67· इतिहास बोध, अक्टूबर-दिसम्बर 1990, पृ0 31

को गलत ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है । इस व्यंग्यात्मक मोड़ के कारण हिन्दू-मुस्लिम जनता में पुराने वैमनस्य पुन: नई प्रासंगिकता के साथ उभरे ।

समीक्ष्य कृति में रचनाकार ने यथार्थ को साहित्य में पुनर्सृजित करने का प्रयास किया है और अपनी संवेदनशीलता को पाठक तक सम्प्रेषित करने का यत्न किया है । यह सच है कि साम्प्रदायिकता की इस वर्तमान प्रवृत्ति के कारण भारतीय जनमानस कई स्तरों पर विभक्त हुआ । हमारे सौहार्द्रपूर्ण सम्बंधों को गहरा आघात लगा ।

5· साम्प्रदायिकता और आबादी :

मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग किए जाने के फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्धों में कटुता आ गई । पंजाब में मुसलमान बहुसंख्यक थे और हिन्दू-सिख अल्पसंख्यक । भारत विभाजन की पूर्वसंध्या पर हुए व्यापक खूबी दंगों में सभी सम्प्रदाय के लोगों की क्षति हुई । विशेष रूपसे इसका कुप्रभाव गरीब लोगों पर पड़ा, चाहे वे किसी धर्म से सम्बद्ध रहे हों। "तमस" में इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि बहुसंख्यकों में सुरक्षा की भावना प्रबल होती है । किंतु अल्पसंख्यक सदैव आतंकित रहते हैं । साम्प्रदायिक उन्माद में सारे सम्बंधों पर पर्दा पड़ जाता है ।

उपन्यास के प्रारंभ में कांग्रेस की गानमंडली जब मुस्लिम बहुल क्षेत्र में जागृति के गीत गाती हुई गुजरती है तो कुछ मुसलमान गली के मध्य में रास्ता

रोक देते हैं । वे कांग्रेस को हिन्दुओं की जमात बताते हुए " पाकिस्तान जिन्दाबाद, कायदे आजम जिंदाबाद" के नारे लगाने लगते हैं । परन्तु ज्यों ही गानमंडली आगे बढ़ना चाहती है, एक लम्बी टोपी वाला मुसलमान रास्ता रोककर कहता है, " आप इधर से मत जाइए, यह मुसलमानों का मुहल्ला है । " [68]

इससे कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच बढ़ते विरोध का अनुमान लगाया जा सकता है । लीगियों को वे कांग्रेसी कत्तई पसन्द नहीं थे जो मुसलमान थे । मौलाना आजाद जैसे राष्ट्रीय नेताओं को वे कुत्ता कहकर अपमानित करते थे । कांग्रेसी कार्यकर्ता तामीरी काम के लिए जब मुसलमानों के मुहल्ले में जाते हैं तो एक वृद्ध उनकी प्रशंसा करता है किंतु वही मस्जिद से लौटते हुए अत्यधिक उत्तेजित दिखाई देता है और काँपती आवाज में कहता है, " खंजीर के बच्चो, यहाँ से चले जाओ ।"[69]

मुसलमानों के इस मुहल्ले में कांग्रेसियों पर पत्थर भी फेंके गए, जिससे वे हड़बड़ाकर वहाँ से निकलने लगे । रास्ते में स्थान - स्थान पर मुसलमानों के जत्थे गलियों के हर मोड़ पर खड़े इन्हें घूर-घूर कर देख रहे थे । बख्शी जी अपनी मंडली के साथ आगे बढ़ते हैं, तभी एक लम्बे कद के मोहयाल व्यक्ति ने उन्हें आगे जाने से सचेत किया । यह वही इलाका था जहाँ सूअर मारकर फेंकी गई है, जो सारे फिसाद की जड़ बताई जाती है । मुस्लिम आबादी

68· तमस - भीष्म साहनी, पृ0 32
69· वही, पृ0 54

बहुल क्षेत्र होने के कारण ये स्वयंसेवी रास्ता बदलने के लिए विवश हो जाते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में एक उत्तेजित मुसलमान सूअर का बदला लेने के लिए गाय मारने की कोशिश करता दिखाया गया है । वह उस भागती गाय को गली में ले जाता है जहाँ उसे मारकर अपनी प्रतिशोधाग्नि शांत करना चाहता है । उपन्यासकार ने उस घिसी-पिटी कट्टर मानसिकता को उभारने का प्रयत्न किया है जो सूअर बनाम गाय के रूप में काफी दिनों से चली आ रही है । इसके माध्यम से हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे की भावनाओं आहत करने का प्रयास करते हैं । हिन्दू संगठन के मंत्री जी उत्तेजित वाणी में कहते हैं कि अगर गोवध हुआ तो खून की नदियाँ बह जाएंगी, किन्तु दंगाई मुसलमानों का दल अल्पसंख्यकों (हिन्दू-सिख) की अस्मिता से जब दिन दहाड़े मजाक करता है, यहाँ तक कि लड़कियों के साथ पाशविक स्तर पर बलात्कार की घटनाएँ होती हैं, तब कोई मंत्री उनका दुख: दर्द बाँटने नहीं जाता । इसीलिए सभा में उपस्थित अन्य लोग वानप्रस्थी जी और मंत्री जी को भाँति उत्तेजित नहीं थे । वे जानते थे कि दंगों से हिन्दू-सिखों की जान माल का अधिक भय है ।

प्रत्येक मुहल्ले में मुसलमानों की आबादी थी । कुछ ऐसे क्षेत्र थे जहाँ केवल मुसलमान रहते थे । ऐसी परिस्थिति में, जब दंगे हो रहे हो, लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हों, उस इलाके में जाना, जहाँ दूसरे समुदाय की आबादी ज्यादा हो, अत्यंत खतरनाक है । "तमस" में इसके संकेत मिलते है

कि हमसाए एक दूसरे पर हाथ नहीं उठाते हैं । स्वयं भीष्म साहनी स्वीकार करते हैं कि --" मुसलमान पड़ोसी हिन्दू पर हाथ नहीं उठाता था, बल्कि उसके बचाव के साधन ढूँढ़ता था, इसी तरह हिन्दुओं के मुहल्ले में रहने वाला मुसलमान भी ज्यादा महफूज था । पर धार्मिक मदान्धता के प्रभाव में वही हिन्दू या मुसलमान शहर के किसी दूसरे इलाके में निस्संकोच कत्लोगारत कर सकता था । ..... मुहल्ले वालों ने मुहल्लेदारी निभाई, आँख का लिहाज रखा, किसी-किसी जगह पनाह भी दी । लेकिन अपने ही गाँव से दूसरे गाँव को यही लोग ढ़ोल बजाते और नारे लगाते हुए गए भी और वहाँ लोगों को मौत के घाट भी उतारा, घरों को आग भी लगाई और लूट पाट भी की ।"[70]

"तमस" में मौलादाद लाला लक्ष्मीनारायण से कहता है, "खातिर जमा रखिए लाला जी, हमारे रहते आपका कोई बाल भी बाँका नहीं करेगा।"[71] लाला जी के घर के आस-पास छोटे तबके के मुसलमान रहा करते थे और शहर के बड़े मुस्लिम व्यापारियों के साथ उनका व्यापार चलता था, किंतु वातावरण बदल जाने से उनके मन में भय उत्पन्न हो गया था । फत्तहदीन भी लक्ष्मीनारायण को आश्वासन देता है--" बेखबर रहो बाबूजी, आपके घर की तरफ कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता । पहले हम पर कोई हाथ उठाएगा, फिर आप पर उठने देंगे ।"[72]

दंगा भड़क जाने पर उसी मौलादाद की आँखों में खून उतर आता है और पाँच काफिरों को कत्ल कर डालता है । मुहल्लों में एक लक्ष्मण रेखा सी

---

70. आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सं. भीष्म साहनी, पृ0 427.
71. तमस- भीष्म साहनी, पृ0 85
72. वही, पृ0 119

खिंच गई थी जिसे पार करने का हिन्दू मुसलमान कोई भी साहस नहीं करता था । गलियों में लोग लाठियां और भाले लिए घात लगाए बैठे थे ।" अगर लाठियां लिए कुछ लोग खड़े हों तो समझ लो उन्हीं के सम्प्रदाय के लोगों का मुहल्ला शुरू हो जाता है ।"[73] शहर में जहां कहीं भी कोई अकेला मिल जाता, मार डाला जाता था । अपने समुदाय से अलग हुए इकबाल सिंह की मर्मस्पर्शी घटना, धार्मिक अन्ध विश्वास में डूबते - उतराते नरपिशाचों की ओर संकेत करती है, जिनके लिए धर्म परिवर्तन करा लेना मानवता की सबसे बड़ी उपलब्धि मालूम होती है । बलात् धर्म परिवर्तन कराने के लिए इकबाल सिंह के मुँह में खून टपकता, मांस का टुकड़ा ठूँस दिया जाना अमानवीयता की चरम पराकाष्ठा है । धर्मान्ध एवं कट्टरपंथी मुसलमानों से घिरा "इकबाल सिंह उस वक्त आत्म सम्मान के निम्नतम स्तर तक पहुँच चुका था । जब जीवन से चिपके रहने वाला त्रस्तजीव केवल गिड़गिड़ा सकता है, रेंग सकता है, हँसने के लिए कहो तो हँस देगा, रोने के लिए कहो तो रो देगा ।"[74]

इतना ही नहीं, मुसलमानों का संगठित दल "अल्ला हो अकबर" का नारा लगाते हुए हिन्दू घरों को लूटने के पश्चात् अग्नि को समर्पित कर देता है । इसमें हरनाम सिंह का घर भी जला दिया जाता है । हिन्दुओं को देखते ही मार दिया जाता है और लड़कियों की इज्जत लूट ली जाती है । शेख गुलाम रसूल के चबूतरे पर बैठे कुछ मुसलमान अपनी क्रूरता एवं पशुता की गौरव गाथा सुना रहे हैं, " हिन्दुओं की एक लड़की अपने घर की छत पर चढ़

73· तमस -- भीष्म साहनी, पृ0 140

74· वही, पृ0 208

गई । हमने देख लिया जी । सीधे दस-बारह आदमी उसके पीछे छत पर पहुँच गए । वह छत की मुंडेर लाँघकर दूसरे घर की छत पर जा रही थी जब हमने उसे पकड़ लिया । नबी, लालू, मीरा, मुर्तजा, बारी-बारी से सभी ने उसे दबोचा । जब मेरी बारी आई तो नीचे से न हूँ, न हाँ, वह हिले ही नहीं मैंने देखा तो लड़की मरी हुई थी । मैं लाश से ही जना किए जा रहा था।"75

पैशाचिकता की गौरव गाथा कहते उन नर पिशाचों के मुँह नहीं थकते थे । यह सच है उनकी आँखें सदैव हिन्दू लड़कियों और उनकी सम्पत्ति पर लगी रहती थीं । बलवाइयों की अट्टहास सुनकर गुरुद्वारे में एकत्र स्त्रियाँ काँप गई, अपनी अस्मिता बचाने का कोई दूसरा उपाय न देखकर वे सभी अपने नवजात शिशुओं के साथ कुएं में समा गईं ।

"तमस" धर्म के ठेकेदारों के मुँह पर करारा तमाचा है जिनके कट्टर स्वार्थ के कारण जीता जागता इंसान पंगु बन गया, वह जख्म आज नासूर बन कर रिस रहा है । धर्मान्धता की यहकहानी अमानुषिक व्यभिचारों से पूरी होती है जहाँ मनुष्य अपने होने की पहचान खो देता है ।

6· साम्प्रदायिकता और सामाजिक-आर्थिक पहलू :

ब्रिटिश शासन काल में हिन्दू - मुस्लिम वैमनस्य में अभिवृद्धि हुई, जो साम्प्रदायिक विरोध का कारण बना । इस विरोध का स्रोत प्राचीन इतीहास

75· तमस- भीष्म साहनी, पृ0 215

में नहीं, वरन् ब्रिटिश शासन काल में पैदा हुई नयी शक्तियों व परिस्थीतियों के पारस्परिक प्रभावों में खोजना प्रासंगिक होगा ।

ब्रिटिश नीतियों से उत्पन्न भौतिक हितों की टकराहट में हुई तीव्र वृद्धि ने पूर्व ब्रिटिश काल की धार्मिक वैमनस्य की धारा को राजनीतिक संघर्ष के रूप में बदल दिया । हिन्दू-मुसलमानों के बीच आधुनिक प्रगति में तकरीबन एक पीढ़ी का फासला था । यह भी संघर्ष का एक कारण बना । इस अन्तर का प्रमुख कारण मुसलमानों के दृष्टिकोण पर सामंती और रूढ़िवादी विचारों का जबर्दस्त प्रभाव माना जाता है । मुसलमान हिन्दुओं से प्रगति की दौड़ में प्रत्येक स्तर पर पीछे थे । इस दूरी को बनाने में सरकार ने भी महत्व-पूर्ण भूमिका निभाई । अपनी 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार ने दोनों सम्प्रदायों में विभेद उत्पन्न करने के लिए प्रारंभ में हिन्दुओं की पीठ पर अपना हाथ रखा । इसका लाभ उठाकर कुछ हिन्दुओं ने अपनी प्रगति का मार्ग साफ कर लिया । जबकि मुसलमानों को इस प्रगति में उतनी वरीयता नहीं मिल सकी । परिणाम यह हुआ कि एकांगी प्रगति को देखकर मुसलमानों के मन में हिन्दुओं के प्रति द्वेष की भावना प्रबल हुई । कालांतर में, देश विभाजन के समय उनके मन में सुषुप्त ज्वालामुखी फूट पड़ा ।

आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता के मूल में केवल धार्मिककारण ही नहीं, सामाजिक-आर्थिक वैषम्य भी एक कारण है । भीष्म साहनी का "तमस" इन्हीं घटनाओं के संयोजन और विश्लेषण का परिणाम कहा जा सकता है ।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति को साम्प्रदायिकता के एक कारण के रूप में रेखांकित किया गया है ।

लेखक ने अपने इस उपन्यास में जटिल सामाजिक - आर्थिक पहलू पर पाठक का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है । "तमस" के समग्र अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शाहनवाज, रघुनाथ, लक्ष्मी-नारायण और तेजासिंहजैसे रईसों पर दंगों का दुष्प्रभाव नहीं पड़ता, किंतु गरीब एवं निर्दोष करीम बक्श, इब्राहिम , इत्रफरोश जैसे लोग मार दिए जाते हैं ।

विभिन्न सम्प्रदाय के उच्चवर्गीय लोगों के बीच आपसी सद्भाव का आधार सामाजिक और आर्थिक स्थितियाँ होती हैं । कालेज के दो चपरासी बातें कर रहे थे, "हम जाहिल लोग लड़ते हैं, समझदार खानदानी लोग नहीं लड़ते । यहाँ सभी आए हैं हिन्दू भी, सिख भी, मुसलमान भी, मगर कैसे प्यार मुहब्बत से बातें कर रहे हैं । "[76]

हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर हिन्दी में कई कृतियाँ आई, परन्तु "तमस" में भीष्म साहनी ने अपनी अलग पहचान बनायी । इसमें समस्या के सामाजिक- आर्थिक पहलू को भी इंगित किया गया है । यह कृति समाज के उस विडम्बनापूर्ण यथार्थ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है जहाँ हिन्दुओं

76· तमस - भीष्म साहनी, पृ0 254

की मुसलमान विरोधी घृणा उच्च और निम्नवर्गीय मुसलमानों में अन्तर करती है, ठीक वैसे ही, जैसे कट्टर मुसलमानों की हिन्दू विरोधी घृणा गरीब हिन्दुओं पर ही कहर ढ़ाती है । भीषण साम्प्रदायिक दंगे की अवस्था में शाहनवाज अपने मित्र रघुनाथ के प्रति अधिक सतर्क एवं चिंतित दिखाई देता है, किंतु उसकी हिन्दू- विरोधी घृणा मिल्खी को अपना ग्रास बनाती है । रघुनाथ को भी मिल्खी की कोई चिंता नहीं है । जब शाहनवाज उसकी पत्नी के जेवर लाकर देता है तो बहुत कृतज्ञ होती है जैसे किसी पुण्यात्मा के दर्शन कर रही हो । "घृणित स्वार्थ के इस बिन्दु पर साम्प्रदायिकता ग्रस्त समाज की खोखली और स्वयंसेवी आध्यात्मिकता भी नंगी हो जाती है । साथ ही उच्चवर्गीय गठजोड़ पर पूंजीवादी समाज की सेक्युलरिज्म सम्बंधी थोथी संकल्पना का राज भी उद्घाटित हो जाता है । "[77]

समीक्ष्य कृति में आर्थिक त्रस्तता का नाजायज लाभ उठाने की ओर संकेत किया गया है ।नत्थू द्वारा सूअर मारना इसका ज्वलंत उदाहरण है । जब नत्थू को यह ज्ञात होता है कि दंगे की शुरुआत उसी सूअर के कारण होती है तो उसे पश्चात्ताप होता है । वह इस गुत्थी को सुलझाने में असमर्थ रहता है कि एक मुसलमान होकर मुराद अली ने ऐसा क्यों किया ?

यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि भारत में साम्प्रदायिकता की

77· भीष्म साहनी; व्यक्ति और रचना, सं· राजेश्वर सक्सेना, पृ0 131

जो ज्वाला स्वतंत्रतापूर्व भड़की थी वह आज भी शांत नहीं हो सकी है। मुराद अली जैसे लोग आज भी देश में साम्प्रदायिकता के तमस को बरकरार रखने पर आमादा हैं ।

"तमस" में लेखक ने साम्प्रदायिक समस्या के जिस सामाजिक-आर्थिक पहलू का उद्‌घाटन किया है, वह इसकी महान उपलब्धि है । भीष्म साहनी ने पूंजीवादी मनोवृत्ति का खुलासा करते हुए दूसरे वर्ग के प्रति उनकी संवेदन-शून्यता को निर्दिष्ट किया है ।

इस उपन्यास में हरनाम सिंह- संतो का मर्मस्पर्शी प्रसंग है । मुसलमानों के गाँव में उसे आश्वासन देने वाला कोई नहीं मिलता, बल्कि करीम खानउसे गाँव छोड़ने की सलाह देता है । इसके विपरीत लाला लक्ष्मीनारायण को कट्टर लीगी हयातबक्श सुरक्षा के प्रति आश्वस्त करता है । जाहिर है कि लक्ष्मीनारायण व्यापारी वर्ग से जुड़े थे जबकि हरनाम सिंह एक खाता-पीता चाय का दुकानदार । अधेड़ावस्था में पत्नी के साथ मातृभूमि का त्याग एवं संतानों से वियोग हरनामसिंह के अंतिम दिनों को अत्यंत दुखमय बना देते हैं । भावनाओं पर उसके दबाव को रेखांकित किया है ।

मुंशी राम और नूरइलाही सम्पति की खरीद फरोख्त के लिए उतावले दिखते हैं । इनकी चिंता का एकमात्र कारण कीमतों का उछलना-कूदना है । " व्यापारी वर्ग की इन चिंताओं के आलम में गरीब जनता की

बदनसीबी और आफ्तों का सिलसिला अपनी हृदय विदारक स्मृतियों के साथ आँखों के आगे तैर जाता है, अपनी करुण और अबोध भावुकता के साथ जो दुखद और त्रासद घटनाओं से कोई सबक नहीं लेती और दूर घटनाओं और विपदाओं को भी मजहबी जनून और अंधी जातीयता के रंग में महिमा-मंडित करने से बाज नहीं आती ।"[78]

वस्तुत: पूँजीवादी उपभोक्ता संस्कृति के फलस्वरूप मानवीय संबंधों में ह्रास हुआ है । पुराने मूल्य टूटने लगे और एक नवीन संवेदनहीन सामाजिक व्यवस्था ने जन्म लिया । लोगों का उदात्त मानस संकीर्ण हो गया । ऐसी स्थिति में साम्प्रदायिकता जैसी विसंगतियों का प्रादुर्भाव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं । यदि हम कहें कि " तमस" उपन्यास मानवतावादी अधतन दर्शन की सीमाओं का अतिक्रमण कर साम्प्रदायिकता की समस्या और उससे सम्पृक्त विचार धारात्मक सन्दर्भों के नए और वैज्ञानिक यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ व्याख्यायित करता है"[79] जो अत्युक्ति न होगी ।

"तमस" सामाजिक सम्बंधों की परतों में दबी घनीभूत पीड़ा की अभिव्यक्ति है । यह जाने पहचाने तथ्यों, परन्तु कलात्मक दृष्टि से बेजोड़ उपन्यास है। अपने समानधर्मा उपन्यासों में वस्तुगत ऐक्य के बावजूद प्रभाव और शिल्प में उनसे अलग है । स्वातंत्र्य पूर्व साम्प्रदायिक स्थिति के कारण-कार्य संबंधों का वर्णन इस उपन्यास की विशेषता है । अपनी विश्लेषणात्मक टिप्पणी करते हुए लेखक की

---

78. भीष्म साहनी, व्यक्ति और रचना, सं. राजेश्वर सक्सेना, पृ0 135
79. वही, पृ0 138

अभिव्यक्ति, " यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाइयों की श्रृंखला में एक कड़ी ही थी । लड़ने वालों के पांव बीसवीं सदी में थे, सिर मध्य युग में ।"[80]

....0.....

---

80. तमस - भीष्म साहनी, पृ0 21।

तृतीय अध्याय

निष्कर्ष

तृतीय अध्याय -- निष्कर्ष

तमस एक ऐसा दस्तावेज है जो हमें साम्प्रदायिकता के भयानक परिणामों से अवगत कराता है । प्रतिक्रियावादियों ने धर्म के नाम पर जिन्हें आपराधिक वृत्ति में दीक्षित किया था, उन्होंने खुलकर इस हिंसा में भाग लिया । हिंसावादी तत्व न तो धार्मिक व्यक्ति थे और न ही किसी धर्म या मानवीय मूल्यों में उनकी कोई आस्था थी । निस्संदेह वे स्वार्थी तत्व थे जो अपनी कुटिल राजनीति से समाज में वैमनस्य एवं हिंसा फैला रहे थे ।

तमस के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य आदमी साम्प्रदायिक न होते हुए भी हिंसा का शिकार होता है जबकि साम्प्रदायिकता से उसका कोई स्वार्थ नहीं जुड़ा होता । साम्प्रदायिकता फैलाने के लिए विशेष रूप से राजनीतिज्ञ, तथाकथित धार्मिक नेता और वे प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ उत्तरदायी होती हैं जो समाज पर अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहती हैं । इसमें किसी न किसी तरह उनका स्वार्थ जुड़ा होता है । ऐसे लोग धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के नाम पर लोगों को उत्तेजित करते हैं और इतिहास मनमाने ढंग से व्याख्या करते हैं । भारत की अधिकांश जनता आज भी अशिक्षित है । अशिक्षा भी साम्प्रदायिकता के विकास का एक प्रमुख कारण है ।

भारत की तत्कालिन सामाजिक व्यवस्था में जमींदारों का प्रभुत्व था । समाज ब्राह्मणवाद के चंगुल में जकड़ा हुआ था । उच्च वर्ग अपनी स्वार्थ

सिद्धि के लिए कुछ भी कर सकता था । उन्हें सरकारी संरक्षण भी प्राप्त था ऐसी स्थिति में गरीब जनता हर तरह से परेशान होती थी । भारत - विभाजन की त्रासदी का व्यापक प्रभाव इसी वर्ग पर पड़ा ।

भारत विभाजन और साम्प्रदायिक समस्या की पृष्ठभूमि पर हिन्दी में कुछ अन्य उपन्यास भी लिखे गये हैं । उनमें से 'झूठा-सच' 'आधा गाँव' पर विचार कर लेना प्रासंगिक होगा ।

'आधा गाँव' में मुस्लिम लीग का क्षीण प्रभाव देखा जा सकता है । उसके कार्य कर्ता कभी-कभी गावों में आकर मुस्लिम लीग और पाकिस्तान के बारे में बातें करते हैं किंतु अशिक्षित जनता इस बारे में बहुत अधिक नहीं सोच पाती । उसे पाकिस्तान और मुस्लिम लीग के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। कुछ सोचते हैं कि पाकिस्तान कोई अच्छी चीज हो सकती है । गँगौली की बड़े मुस्लिम घराने की औरतें पाकिस्तान बनने से उतनी खुश नहीं होती लेकिन जमींदारी खत्म होने का उन्हें काफी दुख है ।

'झूठा-सच' में सभी राजनैतिक दलों का वर्णन मिलता है । इस उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत की कांग्रेसी शासन व्यवस्था ब्रिटिश शासन व्यवस्था व्यवस्था के समतुल्य मानी जा सकती है । नेताओं की स्वार्थ पूर्ण कपटनीति का उद्घाटन भी लेखक ने किया है । पूँजीवादी व्यवस्था में कसते हुए समाज को राजनीतिज्ञ आदर्शवाद के जरिये छलते रहते हैं ।

तमस में मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक शक्तियाँ दंगे भड़काती हैं । मुस्लिम लीग विभाजन चाहती है । कांग्रेस आदर्शवादी ढंग से स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करती है तो वामपंथ साम्प्रदायिक एकता व सौहार्द्र के लिए प्रयत्नशील है ।

'झूठा-सच' में लाहौर के आंचलिक जीवन का जिस सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है, वह तमस में नहीं मिलता । किंतु 'आधागाँव' में भोजपुरी के माध्यम से गंगौली के साथ उस संपूर्ण अंचल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक झाँकी अभिव्यक्त हुयी है । 'झूठा-सच' में निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की यथार्थ स्थितियों का उद्‌घाटन हुआ है । देश की परिवर्तित होती परिस्थितियों में मध्यवर्गीय टूटन को भी देखा जा सकता है । "आधागाँव" में भी मुस्लिम जीवन-पद्धति के माध्यम से उसकी मान्यताओं, रीतिरिवाजों एवं रूढ़िग्रस्त मानसिकता का यथार्थ वर्णन हुआ है । इस बिन्दु पर तमस बिल्कुल चुप है । तमस में सामाजिक जीवन अदृश्य है । यशपाल ने अपने उपन्यास में भ्रष्ट नौकर शाही अमानवीय राजनीति एवं मूल्यहीन सामाजिक व्यवस्था का चित्रण किया है । 'आधागाँव' में गंगौली के लोग गंगौली से प्यार करते हैं । वे उसे छोड़कर जाना नहीं चाहते वे पाकिस्तान के प्रति किंचित् आकृष्ट होते हैं किंतु यह सवाल उनके जेहन में कौंधता है कि क्या गंगौली पाकिस्तान में जाएगा । उनके लिए गंगौली का महत्व ज्यादा है । उपन्यास में मुस्लिम लीग के बढ़ते प्रभाव की ओर इंगित किया गया है । मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता पृथक राष्ट्र की माँग

करते हैं । उपन्यास में "नारा ए तकरीर " एवं " पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारे भी गूँजते हैं । किंतु पूरे उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों के बीच किसी प्रकार की हिंसात्मक गतिविधि नहीं पायी जाती जबकि "तमस" में प्रारंभ से ही साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि तैयार की जाती है । 'झूठा-सच' और 'तमस' इन दोनों उपन्यासों में साम्प्रदायिक शक्तियों के उत्थान और दंगों का वर्णन हुआ है किंतु 'तमस' की कथा सिर्फ यहीं तक सीमित रह गयी है जबकि झूठा सच में दंगों के पश्चात् विस्थापित परिवारों की स्थिति, अस्तित्व के लिए संघर्ष, राजनैतिक दलों की गतिविधियों तथा तत्कालीन शासन व्यवस्था का विशद वर्णन हुआ है ।

झूठा सच में शरणार्थी समस्या और संयुक्त परिवार के विघटन का वर्णन है । 'तमस' और 'आधा गाँव' में यह समस्या देखने को नहीं मिलती । 'झूठा-सच' एवं 'आधा गाँव' में रूढ़िगत चेतना के खंडहर देखने को मिलते हैं । 'आधा गाँव' में सामंती व्यवस्था के चित्र देखने को मिलते हैं । मिथ्या अहं से ग्रस्त जमींदार वर्ग की ह्रासमान चेतना को इसमें देखा जा सकता है । उपन्यासकार की मौलिक चिंता यह है कि गंगौली में गंगौली वालों की संख्या कम होती जा रही है । जबकि हिन्दुओं, मुसलमानों या शिया सुन्नियों की संख्या बढ़ रही है । आधा गाँव में मुसलमानों के त्यौहारों पर एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले के प्रति बढ़ती प्रतिस्पर्धा को देखा जा सकता है । इस तरह के वर्णन 'तमस' या 'झूठा-सच' में नहीं मिलते ।

'झूठा-सच' में लगभग एक दशक की राजनीतिक, सामाजिक एवं साम्प्रदायिक गतिविधियों का प्रत्येक पहलू से अध्ययन किया गया है जबकि 'आधा-गाँव' में ऐसी राजनीतिक या साम्प्रदायिक सरगर्मी नहीं दिखाई देती । 'तमस' इस संदर्भ में एकांगी उपन्यास है । इसमें सिर्फ कुछ दिनों की साम्प्रदायिक स्थिति का वर्णन किया गया है ।

'तमस' में देश पर छाये हुए उस गहन अंधकार की ओर संकेत है जो अपने मर्म में उन तमाम नकली चेहरों को छिपाए हुए हैं जिन्हें सामने आने में डर लगता है किंतु वे असंगठित प्रयासों को निगल जाया करते हैं । लेखक ने वतन की याद में एक नये दर्द का अनुभव किया है । यह कहानी यथार्थ को समझ पाने का प्रयास है । मूल्यहीनता की स्थिति में भी मानवता का एक स्फुलिंग कहीं न कहीं छिपा रहता है । साम्प्रदायिकता की तह में अपने सम्प्रदाय के लोगों को सत्पुरूष एवं दूसरे सम्प्रदाय को राक्षस समझने की अवधारणा उस उपन्यास में अंतत: खण्डित हो जाती है । 'तमस' की प्रासंगिकता इस बात में है कि दिन-प्रतिदिन साम्प्रदायिक दंगों के बावजूद लोगों की आँखों के सामने हिन्दू, सिक्ख या मुसलमान ही नहीं दिखते, इंसान भी नजर आते हैं ।

....0.....

~~चतुर्थ अध्याय~~

परिशिष्ट

तमस - विवाद

~~चतुर्थ अध्याय~~

परिशिष्ट : तमस धारावाहिक पर विवाद

गोविन्द निहलानी का दूरदर्शन धारावाहिक "तमस" भीष्म साहनी के उपन्यास "तमस" पर आधारित है । इसकी पहली एवं दूसरी कड़ी दूरदर्शन पर क्रमशः 9 एवं 16 जनवरी 1988 को दिखाई गई । इसके तुरंत बाद 'तमस' धारावाहिक ने एक विवादास्पद मोड़ ले लिया । बम्बई के कुर्ला क्षेत्र में रहने वाले व्यापारी जावेद सिद्दीकी ने बम्बई उच्च न्यायालय में "तमस" के विरूद्ध 20 जनवरी 1988 को याचिका दायर की । इस याचिका में यह आरोप लगाया गया था कि 'तमस' के प्रसारण से देश के कई भागों में हिंसा भड़क सकती है । इसलिए इस पर तुरंत रोक लगा दी जानी चाहिए। न्यायाधीश एस॰बी॰ प्रताप ने 23 जनवरी 1988 को दिखाए जाने वाले भाग को अगले आदेश तक न दिखाने का निर्देश दिया । इसी दिन इस धारावाहिक के निर्देशक गोविन्द निहलानी ने बम्बई उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के समक्ष अपनी याचिका दायर की । जिसमें धारावाहिक को दिखाये जाने के पक्ष में अनुमति माँगी गई थी । खण्डपीठ के न्यायाधीश- द्वय बख्तावर लैंटिन एवं सुजाता मनोहर ने 22 जनवरी को सम्पूर्ण धारावाहिक देखने का निर्णय लिया । छह घंटे तक पूरा धारावाहिक देखकर एवं वकीलों की दलीलों को सुनने के पश्चात् न्यायाधीश द्वय ने 23 जनवरी 1988 को धारावाहिक की अगली कड़ी दिखाए जाने के पक्ष में निर्णय दिया । उन्होंने कहा कि

"तमस विभाजन पूर्व दिनों में फैले साम्प्रदायिक पागलपन का व्यवच्छेन है जिसमें दिखाया गया है कि दोनों सम्प्रदायों के अतिवादी और रूढ़िवादी तत्व किस तरह अबोध व्यक्तियों को अपने प्रच्छन्न स्वार्थों की सिद्धि के लिए ठगकर हिंसा पर उतरने की तालीम देते हैं, कैसे तनाव की हालत पैदा करके और नफरत जगाकर सौमनस्य की बलि देते हैं, कैसे आगे चलकर आदमी के भीतर इसकी निरर्थकता का अहसास उभरता है और कैसे अंत में इंसान के अंदर छिपी भलमनसाहत जीत जाती है ।"

[धर्मयुग - 6 मार्च 1988]

28 जनवरी को न्यायाधीश एस·सी· प्रताप ने न्यायाधीश द्वय वी· लेंटिन एवं सुजाता मनोहर के निर्णय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि " इससे न्यायिक चेतना पीड़ित होती है । इस असाधारण जल्दबाजी और न्यायालय की प्रक्रिया के महान दुरूपयोग को उन्होंने विस्मय-कारी परिदृश्य अनुभव की संज्ञा दी ।"

[धर्मयुग - 6 मार्च 1988]

1 फरवरी 1988 को सर्वोच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने 'तमस' के प्रदर्शन पर रोक लगाने सम्बन्धी याचिका खारिज कर दी । अपने निर्णय में न्यायमूर्ति सव्यसाची मुखर्जी और न्यायमूर्ति एस· रंगनाथन ने कहा कि तमस न किसी के मौलिक अधिकारों का हनन करता है और न ही इसकी संभावना है । अतएव इस पर प्रतिबन्ध लगाने की जरूरत नहीं है ।

तमस के प्रसारण पर रोक लगाने सम्बन्धी तर्क :

न्यायाधीश द्वय बी.लैंटिन एवं सुजाता मनोहर ने अपने निर्णय पत्र में तमस के प्रसारण पर रोक लगाने सम्बन्धी दलीलें इस प्रकार बतायी है ---

1. सर्व साधारण लोगों पर, जो ज्यादातर निरक्षर हैं, तमस घातक करेगा । विशेषकर देश के युवकों पर, जिन्हें धर्म-गुरूओं द्वारा हिंसा का प्रशिक्षण लेते हुए दिखाया गया है ।

2. आज का युवक नहीं जानता कि बँटवारे से पहले कुछ दिनों में साम्प्रदायिक आग कैसे भड़क उठी थी । तमस का प्रसारण उन्हें उससे अवगत कराएगा ।

3. तमस में सब कुछ ऐसा दिखाया गया है जो मुसलमानों के खिलाफ है । उनका पाकिस्तान जिंदाबाद का नारा लगाना उनकी छवि बिगाड़ता है ।

4. तमस किसी को नसीहत नहीं देता । उल्टे धार्मिक नारे लगवाकर युवापीढ़ी के दिमागों में जहर घोलता है ।

5. किरपान वाला गाना हिंसात्मक भाव जगाता है ।

6. इसे दिखाने का समय शनिवार की रात होने की वजह से परिवार के सभी लोग देखेंगे और उसका कच्ची उम्र वालों पर बुरा असर पड़ेगा ।

न्यायाधीशों ने कहा कि धारावाहिक पर रोक लगाने का तात्पर्य अकारण संदेह पैदा करना होगा । तमस राजनीतिक कट्टरपंथियों की चाल में न फँसने का संदेश देता है ।

(धर्मयुग - 6 मार्च 1988)

"तमस" पर विभिन्न व्यक्तियों संगठनों एवं राजनीतिक दलों की प्रतिक्रियाएँ:

तमस के प्रदर्शन का विरोध करने वाले दल थे -- भारतीय जनता पार्टी, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद, हिन्दू महासभा, सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, वाल्मीकि सभा, गुरू रविदास जयंती समारोह समिति, इंटरनेशनल सिख ब्रदर हुड, जैन समाज । और इन संगठनों ने 29 जनवरी 1988 को दिल्ली दूरदर्शन महानिदेशालय के समक्ष विरोध प्रदर्शन किया इसी तरह का प्रदर्शन भारतीय जनता पार्टी के सांसद प्रमोद महाजन के नेतृत्व में बम्बई दूरदर्शन केन्द्र के समक्ष हुआ । प्रदर्शनकारियों ने आरोप लगाया कि 'तमस' से देश दो सम्प्रदायों में बँट जाएगा । जालंधर में भी हिन्दू सुरक्षा समिति ने विरोध प्रदर्शन किया । सैयद शहाबुद्दीन ने तमस को "आंशिक तथा इतिहास का हिन्दू दृष्टिकोण" कहा । (संडे 7-13 फरवरी 1988) शिव सेना प्रमुख बाल ठाकरे का कहना था कि '--" तमस में दिखाया गया है कि सभी हिन्दू खूनी हैं और सारे मुसलमान सज्जन । इससे हिन्दुओं की बदनामी होती है । भीष्म साहनी वामपंथी हैं इस कारण उन्हें धर्म के प्रति जरा भी आस्था नहीं है । संभव है कि इस धारावाहिक के प्रदर्शन से देश में फिर एक बार बँटवारे

के पहले वाली स्थिति आ जाए । इसलिए हम चाहते हैं कि तमस पर तुरंत पाबंदी लगा दी जाए ।" ‖ धर्मयुग - 6 जनवरी 1988 ‖

बम्बई उच्चन्यायालय के निर्णय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बाल ठाकरे ने कहा कि " अब आंदोलन अपरिहार्य है । तमस पर रोक न लगाने वाले न्यायाधीशों के खिलाफ भी आंदोलन छेड़ना पड़ेगा । बाल ठाकरे का कहना था कि तमस में जो वस्तु इतिहास के रूप में दिखाई गई है वह एकांगी और विकृत है । तमस यह दिखाता है कि हिंसाचार पहले हिन्दुओं ने किया और फिर प्रतिक्रिया स्वरूप मुसलमानों ने किया, जो गलत है । तमस के मामले में न्यायाधीशों ने अपनी क्षमता का अतिक्रमण कर कहानी को इतिहास बताया है । इसमें यह नहीं बताया गया है कि मुस्लिम साम्प्रदायिकता को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का संरक्षण प्राप्त था और मुसलमानों को पृथक चुनाव क्षेत्रों तथा आरक्षण की व्यवस्था की अंतिम परिणति कलकत्ता और रावलपिंडी के दंगों में हिन्दुओं की तबाही के रूप में हुई और उन्होंने विवश होकर विभाजन के पक्ष में मौन स्वीकृति दे दी । यही पागलपन और हिंसाचार का कारण बना । ‖ धर्मयुग - 6 मार्च 1988 ‖

के0 आर0 मलखानी ने " तमस को पहचान में न आने वाला जारतत्व" कहा है । सूर्यकांत बाली ने प्रश्न उठाया कि क्या भीष्म साहनी अपनी पुस्तक को इतिहास मानना चाहेंगे ? भाजपा के महासचित कृष्णलाल शर्मा और राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य जे0पी0 माथुर ने कहा कि धारावाहिक

की सबसे बड़ी विकृति यह है कि " उसमें ऐसा प्रतीत होता है कि दंगों की उत्तेजना के फलस्वरूप विभाजन हुआ, जबकि सच्चाई यह है कि दंगे विभाजन के बाद विभाजन के परिणाम के रूप में हुए ।"

(धर्मयुग - 6 मार्च 1988)

26 जनवरी 1988 के "टाइम्स आफ इण्डिया" में गिरिलाल जैन ने लिखा था कि " बम्बई उच्चन्यायालय को तमस के विषय में याचिका स्वीकार ही नहीं करनी चाहिए थी, ऐसी याचिका स्वीकार करने की क्षमता के बावजूद क्या दूरदर्शन अथवा सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की कार्यकारिणी प्रतिबन्ध जैसे विषय पर निर्णय नहीं दे सकती ? अगर न्यायपालिका कार्यकारिणी के निर्णय देने का कार्य करती है तो यह अकारण हस्तक्षेप होगा।"

निर्मल गौस्वामी ने 26 जनवरी 1988 के 'इंडियन पोस्ट' में इसी मुद्दे को ज्यादा स्पष्ट करते हुए कहा कि बैंकों की तरह विशेषाधिकारों के गढ़ बने न्यायालय हमारे व्यक्तिगत जीवन का निर्णय करने लगे हैं । 'तमस' के विवाद को राजनीतिक निर्णय द्वारा सुलझाया जाना चाहिए था ।"

भा·ज·पा· के विजयकुमार मल्होत्रा ने आरोप लगाया कि जो सरकार पिछले दो ढ़ाई दशक से राज्य सरकारों को यह सलाह देती रही है कि पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे अंशों को निकाल दिया जाए, जिनसे हिन्दू मुसलमानों के सम्बंध पर बुरा असर पड़ सकता है, वही सरकार दूरदर्शन पर तमस

दिखाए, यह हैरत अंगेज बात है । पुराने घावों को हरा करने की जरूरत क्यों आ पड़ी ? तमस में इतिहास को ही नहीं तोड़ा-मरोड़ा गया है उपन्यास के साथ भी खिलवाड़ किया गया है । तमस में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और आर्य समाज की भूमिका को जिस तरह पेश किया गया है वह आपत्ति जनक है । इन संगठनों को जानबूझकर बदनाम किया गया है "

(दिनमान 15 फरवरी 1988)

कांग्रेस के नरेश चन्द्र चतुर्वेदी ने कहा कि " गोविन्द निहलानी ने उपन्यास के तथ्यों को तोड़ - मरोड़कर साम्प्रदायिक रूप दिया है । सुअर मार कर मस्जिद में फेंकने की घटना उपन्यास से भिन्न चित्रित की गई है । 'हर-हर महादेव' के नारे को बढ़ा चढ़ाकर और "अल्ला हो अकबर" के नारे को पृष्ठभूमि में डालकर गोविन्द निहलानी ने भूल की है । "

(दिनमान 15 फरवरी 1988)

तमस के प्रदर्शन के पक्ष में भी अनेक व्यक्तियों एवं संगठनों ने अपने मत प्रकट किए । बम्बई की एकता समिति द्वारा आयोजित शिविर में तमस के पक्ष में विचार व्यक्त किया गया । अहल्या रांगणेकर ने कहा कि तमस से अंग्रेजों की "फूट डालो और राज करो" की नीति ही स्पष्ट होती है । हम अपने इतिहास से मुँह नहीं चुरा सकते । आज तो हर बात को साम्प्रदायिकता से जोड़ा जाता है । वही बात तमस के संदर्भ में हुई है ।"

4 फरवरी को बम्बई के कुछ संगठनों ने मिलकर शहीद चौक पर धरना दिया और साम्प्रदायिकता के खिलाफ एकता प्रदर्शित करते हुए मानव

श्रृंखला बनायी जिसमें अन्य लोगों के अतिरिक्त गोविन्द निहलानी, दीपा साही, अमोल पालेकर, शफी इनामदार, शमा जैदी, आनंद पटवर्धन , इला अरुण आदि ने भाग लिया ।

तमस के संदर्भ में व्यक्तियों, राजनीतिज्ञों, सामाजिक कार्यकर्ताओं कलाकारों तथा अनेक संगठनों ने पक्ष-विपक्ष में मत व्यक्त किए । कुछ ने वाणी प्रयोग किए तो कुछ ने बल प्रयोग किए । हैदराबाद, दिल्ली और बम्बई में तोड़-फोड़ एवं दंगाफिसाद की घटनाएं हुई । कुछ हिंसक वारदातें भी हुई, जिससे पुलिस को गोली चलानी पड़ी थी । (इंडिया टुडे, फरवरी 29, 1988)

तमस के निर्देशक गोविन्द निहलानी के घर पर छह अज्ञात -- व्यक्तियों ने जाकर पूछा कि क्या वो यहीं रहता है? फोन पर उन्हें धमकी दी गई कि बच्चू तुमने ऐसा धारावाहिक बनाया है? हम तुम्हें दिखाते हैं । अब संभलकर रहना । क्या तुमने एक पात्र का नाम देवव्रत इसलिए नहीं रखा है कि वह देवरस जैसा सुनाई पड़ता है । (धर्मयुग - 6 मार्च 1988)

न्यायमूर्ति बी॰ लैंटिन एवं न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर के निर्णय के पश्चात् जब पत्रकारों ने जावेद सिद्दीकी से पूछा कि " क्या उनकी तात्कालिक प्रतिक्रिया यह नहीं है कि दंगों जैसी चीजें कभी नहीं दुहराई जानी चाहिए तो उनका उत्तर था कि राजनीतिज्ञ इससे कुछ नहीं सीखेंगे । वे अपने स्वार्थ का पाठ पढ़ चुके होते हैं । उनके लिए देश काल एवं सम्प्रदाय बाधा नहीं बन सकता ।" (धर्मयुग - 6 मार्च 1988)

तमस : पत्रकारों, साहित्यकारों एवं कलाकारों की दृष्टि में

'तमस' के प्रदर्शन पर उठे विवाद में समाज के सभी अंगों ने हिस्सा लिया। प्रस्तुत है कुछ पत्रकारों, साहित्यकारों एवं रंगकर्मियों के विचार:-

(दिनमान 15 फरवरी 1988 से)

1. विभाजन के इतिहास को अगर हम 1988 में जानना चाहते हैं तो हम 1984 के दंगों के बारे में सोचेंगे ही। आजादी के बाद की साम्प्रदायिकता के बारे में सोचेंगे ही। इसीलिए तमस के जरनैल की सनक और हरनाम सिंह की समझदारी या शालीनता का महत्व बढ़ जाता है। -- विनोद भारद्वाज

2. जो बात गुजर गई उसे दुहराने की क्या जरूरत थी, सिवा घृणा फैलाने और दबी हुई गंदगी को उघाड़ने के अलावा यह कुछ नहीं। अगर साहित्य की यह जिम्मेदारी है कि इस समाज के महत्वपूर्ण यथार्थ को प्रक्षेपित करें, तो क्या दूरदर्शन की यह जिम्मेदारी नहीं कि साहित्य को प्रक्षेपित करते हुए वह उन सच्चाइयों का ध्यान रखे जो किसी खास समय में घटी है। -- गिरिराज किशोर

3. इस फिल्म में सारे राजनीतिक दलों को " एक्सपोज" किया गया है- कम्युनिस्ट पार्टी को भी। -- नामवर सिंह

4. जो लोग तमस में साम्प्रदायिक दंगे भड़कने की आशंका जाहिर करते हैं उनसे पूछा जाना चाहिए कि पिछले साल जब मेरठ, अहमदाबाद और देश के कई हिस्से साम्प्रदायिक आग में जल रहे थे तब तो तमस नहीं था। -- एम0के0 रैना

5. तमस हमारे देश का ही नहीं, तन मन का ही इतिहास है एक ऐसा हौलनाक इतिहास जो इतिहास होते हुए भी इतिहास नहीं हो सकता, वह लौटकर बार-बार आरंभ होता है। - ज्ञानी

6. मुझे सारे विवाद पर बहुत गुस्सा आ रहा है। यह एक तरह की बदतमीजी है। निजी रूप से मुझे यह फिल्म बहुत अच्छी नहीं लगी। फिल्म की भाषा का ज्यादा इस्तेमाल नहीं हो पाया है। जिस तरह की हिंसा तमस में दिखाई गई है उससे लोगों के मन में साम्प्रदायिकता के प्रति नफरत नहीं पैदा होती, बल्कि वे "प्रोवोक" होंगे। तमस में सिनेमा की भाषा विभाजन की त्रासदी को ठीक से नहीं " उभार पायी है। पर इसे बंद करने की कोशिश बेकार है। — मंजीत बाबा
(दिनमान 15 फरवरी 1988)

7. जनसत्ता में प्रकाशित लेख " अपने भीतर का तमस" में बाल सुन्दरम् गिरी ने लिखा है कि " टी·वी· सीरियल तमस " में विभाजन और उसके दौरान भड़की साम्प्रदायिकता के गर्भ में मौजूद सच को पूरी शिद्दत के साथ बेशक न उघाड़ा हो— इसे लेकर पैदा हुए विवाद ने अपने जनवादी और प्रगतिशील भाइयों की वैचारिक साम्प्रदायिकता और छद्म प्रगतिशीलता को जरूर बेनकाब कर दिया है।"

बालसुन्दरम् गिरी के अनुसार विभाजन के बीज साम्राज्यवादी शक्तियां

और उनके इशारे पर नाचने वाले कठपुतली नेताओं ने बोये थे और यह कार्य ब्रिटिश साम्राज्य के अंत से बहुत पहले कर दिया गया था । तमस में एक वर्ग-विशेष को साम्प्रदायिक ठहराने के लिए दृश्यों और घटनाओं का वैसा ही संयोजन किया गया है। "तमस का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह था कि इसके जरिये वही विषवमन ज्यादा हुआ है, वैसा ही विद्वेष बढ़ाने की कोशिश हुई है जिसके खिलाफ 'तमस' को खड़ा हुआ बताया गया है।"

-- बालसुन्दरम् गिरि

8. उपन्यास में सूअर मुरादअली कटवाता है जब कि इस नयी प्रगतिशीलता ने मुराद अली का शायद धर्म परिवर्तन करके उसे हिन्दू ठेकेदार बना दिया है । उपन्यास में हिन्दू हिंसा मुर्गी काटकर और इत्रफरोश को मारने तक सीमित थी, उसके साथ हिन्दू ठेकेदार को जोड़कर ऐसा आभास दिया गया है मानो पाकिस्तान में भी हिंसा की शुरुआत और उसकी जिम्मेदारी गैरमुस्लिमों पर थी।"

-- आशुतोष मिश्र "जनसत्ता"

आशुतोष मिश्र का कहना है कि उपन्यास में हिन्दुओं को हास्यापद दिखाया गया है और वानप्रस्थी जी के सबसे पहले अपनी रक्षा के प्रबन्ध की बात को गंभीरता से नहीं लिया गया है । साम्प्रदायिक सद्भाव के नाम पर हिंसा से पहले नहीं किया गया लेकिन सच्चाई को बलिदान कर दिया गया । सच्चाई यह है कि मुस्लिम लीग ने साम्प्रदायिक हिंसा को राजनैतिक हथियार बनाया,

कम्युनिस्ट पार्टी ने उसे हवा दी और कांग्रेस ने इतनी गलती की उसे बर्दास्त किया । बात जिस पाकिस्तान की है वहाँ योजनाबद्ध ढ़ंग से दंगे करवाए गए और गैर मुस्लिमों को जानवरों की तरह ठेलकर बाहर कर दिया गया । साम्प्रदायिक हिंसा मुस्लिम लीग की नितांत निजी राजनैतिक पूँजी थी । कम्युनिस्ट उसके सबसे बड़े वकील थे । भारत विभाजन की इस सामान्य सच्चाई को ठुकराने औरकम्युनिस्टों को धर्म निरपेक्षता का मसीहा दिखाने की वजह से तमस अँधेरे के खिलाफ जाने के बजाय अँधेरे का तरफदार हो गया है ।

आशुतोष मिश्र ने कम्युनिस्ट पार्टी को अधिक जिम्मेदार बताते हुए कहा कि 'तमस' का सबसे आदर्शवादी चरित्र जरनैल सिंह भी कम्युनिस्टों को गद्दार कह देता है । 'तमस' सबको बराबर का साम्प्रदायिक दिखाकर यह कहना चाहता है कि पाकिस्तान से लुट पिटकर आए शरणार्थी अपनी बदकिस्मती के लिए उतने ही जिम्मेदार हैं जितनी मुस्लिम लीग ।

तमस विवाद का एक प्रमुख मुद्दा उसका प्रारंभिक वाक्य रहा जिसमें कहा गया है कि "जो इतिहास को भूलते हैं वे उसे दुहराने के लिए अभिशप्त हैं ।" न्यायाधीश द्वय बी॰ लैंटिन एवं सुजाता मनोहर ने अपने निर्णय में तमस को इतिहास बताया है, मनोरंजन नहीं । तमस विरोधियों का आरोप है कि भीष्म साहनी या गोविन्द निहलानी तमस को इतिहास नहीं मानते, फिर इसे इतिहास क्यों कहा गया जबकि भीष्म साहनी इसे राजनीतिक उपन्यास

मानते हैं । गोविन्द निहलानी पर उपन्यास को तोड़ने-मरोड़ने का आरोप लगाया गया जबकि भीष्म साहनी ने धारावाहिक पर अपना संतोष प्रकट किया ।

28 फरवरी 1988 को जनसत्ता में प्रकाशित लेख " रोशनी के लिए देखना चाहिए तमस" में प्रभाष जोशी ने लिखा है कि " नत्थू से सुअर मरवाने वाले मुराद अली को हिन्दू दिखने वाला ठेकेदार दिखाने पर भीष्म साहनी को कोई आपत्ति नहीं है । तमस में कांग्रेसियों को साम्प्रदायिक हिंसा के असहाय दर्शक और कम्युनिस्टों को साम्प्रदायिक एकता के झंडाबरदार दिखाया गया है । बँटवारे और उसके पहले तथा बाद में हुई हिंसा के लिए अंग्रेजों से भी ज्यादा हिन्दू, मुसलमान और सिख समाजों के साम्प्रदायिक संगठनों को दोषी बताया गया है साम्प्रदायिकता की राजनीति को साम्प्रदायिक संगठनों से छुपाना कांग्रेस की राजनीति के हित को साधता है । कम्युनिस्टों को साम्प्रदायिक एकता के लिए काम करते दिखाना भी कांग्रेसी सरकार को सूट करता है क्योंकि देश के जिन इलाकों में उसे गैर वामपंथी पार्टियों से खतरा है उन्होंने विभाजन की हिंसा को भुगता है और वहीं कम्युनिस्ट पार्टियों का कोई खास असर नहीं है ।

कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टियों पर प्रहार करते हुए प्रभाष जोशी ने लिखा है कि " कांग्रेस को जब और जहाँ जैसा फायदे मंद लगता है वह करती है, कभी हिन्दू साम्प्रदायिकता का कभी मुस्लिम साम्प्रदायिकता का और कभी सिख या ईसाई साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल वह कर चुकी है । कम्युनिस्ट

पार्टियों को अल्पसंख्यकों की साम्प्रदायिकता से कोई ऐतराज नहीं होता है क्योंकि इसका इस्तेमाल बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता के खिलाफ किया जा सकता है । इस माने में साम्प्रदायिकता पर उनके और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के रवैये में फर्क नहीं है । यह कोई ऐतिहासिक संयोग नहीं था कि भा·क·पा·ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग का समर्थन करके द्विराष्ट्र सिद्धांत को मंजूर किया था ।" प्रभाष जोशी ने विभाजन और साम्प्रदायिक हिंसा के लिए राजनैतिक दलों को ज्यादा दोषी ठहराया है ।

'तमस' के लेखक भीष्म साहनी का विचार है कि सिर्फ इतिहास के मलबे की खुदाई करना हमारा उद्देश्य नहीं है बल्कि हमारा उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि उस समय के विभिन्न सम्प्रदायों का लोगों के मनपर जो प्रभाव था, वह सामाजिक शांति के लिए किस तरह घातक सिद्ध होकर बँटवारे का कारण बना ।" (नवभारत टाइम्स 14 फरवरी 1988)

तमस की उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए भीष्म साहनी ने कहा कि "तमस सीरियल का संतोष जनक और उत्साहवर्धक पहलू यही रहा है कि जन सामान्य ने बड़े व्यापक स्तर पर उसे मान्यता दी है ।"

जरनैल सिंह के बारे में भीष्म साहनी का कहना है कि वह जिन्दगी से लिया गया पात्र है । वह मेरा कांग्रेसी साथी भी हो सकता है, एक साधारण गरीब किंतु इस्पाती दिल वाला । डिप्टी कमिश्नर के बारे में उनका कथन

है कि कितनी बिडम्बना की बात है कि रिचर्ड का अचानक इतना सक्रिय हो जाना, जब सब कुछ उजड़ चुका होता है ।

(हिन्दुस्तान टाइम्स-10·2·88)

तमस-विवाद न्यायाधिशों के निर्णय तथा 'तमस' के प्रति लोगों के आग्रह को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश लोगों ने उसे पसंद किया। "तमस के प्रदर्शन के पक्ष - विपक्ष को लेकर किये गये रोचक सर्वेक्षण में जहाँ लगभग सभी धर्मों के लोगों ने हिस्सा लिया, वहीं 64 प्रतिशत लोग इस धारावाहिक को दिखाये जाने के पक्ष में रहे । यह एक सुखद संयोग है कि इसकी लोकप्रियता ने सीमा के बंधन लांघ कर पाकिस्तान में भी काफी लोकप्रियता अर्जित की है।"

(धर्मयुग 21 फरवरी 1988)

यदि 'तमस' उपन्यास की लोकप्रियता पर ध्यान दें तो हमें ज्ञात होता है कि धारावाहिक के प्रदर्शन से अचानक इसकी बिक्री बढ़ गयी थी । तमस पहली बार 1972 में राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रकाशित हुआ था । सन् 1990 तक इसके दह सजिल्द संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और लगभग दस हजार प्रतियाँ बिकीं । सन् 1984 में तमस का पेपर बैक संस्करण प्रकाशित हुआ । अब तक इसके नौ संस्करण प्रकाशित हुए हैं और लगभग पच्चीस हजार प्रतियाँ बेंची जा चुकी हैं ।

राजकमल प्रकाशन के बिक्री प्रबन्धक श्री मोहन गुप्त के अनुसार जनवरी सन् 1988 में दूरदर्शन पर 'तमस' को दिखाए जाने के बाद 'तमस' की बिक्री में अचानक

वृद्धि हुयी । जनवरी 1988 से जून 1988 के बीच 'तमस' की लगभग सात हजार प्रतियाँ बिकीं जबकि इसकी सामान्य बिक्री 5-6 महीनों में 200 से 300 प्रति के बीच हुआ करती थी । श्री मोहन गुप्त ने कहा कि 'तमस' की अचानक बिक्री बढ़ जाने का कारण इसका धारावाहिक रूप में प्रदर्शन तथा उसका विवादास्पद स्वरूप ग्रहण करना था ।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि आम लोगों के बीच 'तमस' अधिक लोकप्रिय हुआ और लोगों ने इसके संदेश को स्वीकार किया । 'तमस' का विरोध उन्हीं संगठनों या व्यक्तियों ने किया जो सम्प्रदाय - आधारित राजनीति करते हैं तमस के प्रदर्शन से ऐसे संगठनों की करतूतें उजागर हुयी हैं । उनकी तिलमिलाहट का सबसे बड़ा कारण यही है कि तमस में इन प्रतिक्रियावादियों का चरित्र उद्घाटित हुआ है । हालांकि ये शक्तियाँ अपना चेहरा छिपाने के लिए धर्म-निरपेक्ष एवं प्रजातांत्रिक शक्तियों पर प्रहार किया करती हैं । तमस को विवाद का विषय बनाकर साम्प्रदायिक शक्तियों ने पुनः अपनी हताश मनोवृत्ति का परिचय दिया और असफल हो गयीं । जनता ने उनके आरोपों पर ध्यान न देकर तमस के यथार्थ को स्वीकार किया । यही तमस की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है ।

----0----

संदर्भ ग्रंथ-सूची

लेखक का नाम	रचना एवं प्रकाशन
क· आधार ग्रंथ	
1· भीष्म साहनी	तमस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली अष्टम संस्करण, 1989
2· राही मासूम रजा	आधा-गाँव राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली तृतीय संस्करण, 1989
3· यशपाल	झूठा-सच लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
ख· सहायक ग्रंथ	
1· डा· विपिन चन्द्र	भारत का स्वतंत्रता संघर्ष हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1990
2· डा· विपिन चन्द्र	स्वतंत्रता संग्राम नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया पंचम आवृत्ति, 1986
3· डा·राम विलास शर्मा	भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, 1982

4. रजनी पामदत्त — आज का भारत
मैकमिलन इंडिया लि0, नई दिल्ली
प्रथम हिन्दी संस्करण, 1985

5. अयोध्या सिंह — साम्राज्यवाद का उदय और अंत
रेखा प्रकाशन, कलकत्ता

6. प्रेमचन्द — विविध प्रसंग (खण्ड तीन)
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
नवीन संस्करण, 1978

7. लीलाराम गुर्जर — भारतीय समाजवादी चिंतन
पंचशील प्रकाशन, जयपुर
प्रथम संस्करण, 1986

8. सूर्यनारायण रणसुभे — देश विभाजन और हिंदी कथा साहित्य
संचयन प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण, 1987

9. जवाहरलाल नेहरू — हिन्दुस्तान की कहानी
सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली
सातवाँ संस्करण, 1985

10. राजेन्द्र यादव — अठारह उपन्यास
अक्षर प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1981

11. राजेश्वर सक्सेना — भीष्म साहनी: व्यक्ति और रचना
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1987

12· भीष्म साहनी — अपनी बात
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1990

13· भीष्म साहनी — आधुनिक हिन्दी उपन्यास
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1980

14· चन्द्रकांत बांदिवडेकर — उपन्यास: स्थिति और गति
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1977

15· निर्मला जैन — हिन्दी उपन्यास:1950 के बाद
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1987

16· डा·पूरनचन्द जोशी — परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

ग· पत्र-पत्रिकाएँ

1· दिनमान — 15 फरवरी, 1988

2· धर्मयुग — 6 मार्च, 1988

3· हंस — 1989, अक्टूबर

4· सापेक्ष — जनवरी-जून 1989

5· इतिहासबोध — अक्टूबर-दिसम्बर 1990

6.	जनसत्ता	28 फरवरी 1988
7.	नवभारत टाइम्स	14 फरवरी 1988
8.	इण्डिया टूडे	29 फरवरी 1988
9.	सण्डे	7 फरवरी 1988
10.	हिन्दुस्तान टाइम्स	10 फरवरी 1988
11.	मेन स्ट्रीम	27 फरवरी 1988

घ. अंग्रेजी पुस्तकें

1. सुमित सरकार — मोडर्न इण्डिया, मैक्मीलन इंडिया लि0, दिल्ली 1983

2. ताराचन्द — हिस्ट्री आफ द फ्रीडम मोवमेंट इन इण्डिया बोल्यूम - थर्ड 1972 न्यू डेल्ही पब्लिकेशन मिनिस्ट्री आफ इंफार्मेशन एंड ब्राडकास्टिंग

----0----